१०३४
८६
वि. वे. २.

...देवग्रन्थमालायाः सप्तमप्रसूनस्य तृतीयसंस्करणम्

॥ श्रीः ॥

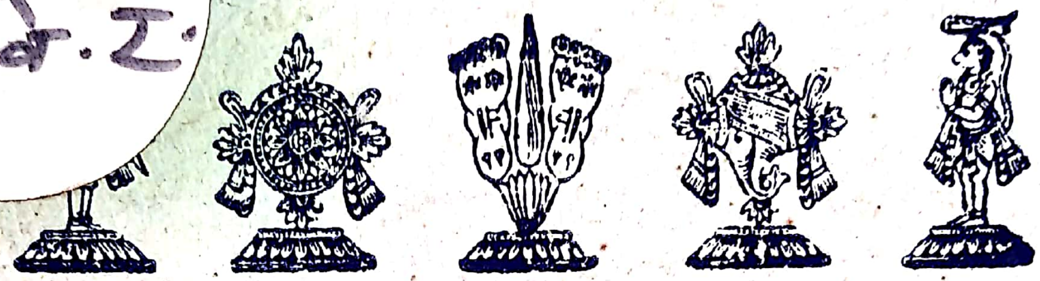

पदच्छेदाङ्कसहितम्

अर्थपञ्चकम्

श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्य वेदान्तप्रवर्तकाचार्य श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य सत्सम्प्रदायाचार्य जगद्गुरुभगवदनन्तपादीय

श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य श्रीत्रिदण्डिस्वामि

विरचितया मर्मबोधिनी नाम्न्या

भाषाटीकया सहितम्

तच्च

छपरास्थ राजकीयसंस्कृतोच्चविद्यालयोपप्रधानाध्यापकेन महायाज्ञिकेन वैदिकशिरोमणिना वेदाचार्य-पौरोहित्याचार्य

पं श्रीरामदेवाचार्येण (श्रीरामदेवशुक्लेन)

संशोधितम्

श्रीस्वामि राजेन्द्राचार्यसदुपदेशेन

पलामूमण्डलान्तर्गत रेहलापत्रालयक गुरहाग्रामयज्ञसमित्या

प्रकाशितम्

श्रीकृष्णजन्माष्टमी] [सम्वत् २०१७

श्रीत्रिदण्डिदेवग्रन्थमालायाः सप्तमप्रसूनस्य तृतीयसंस्करणम्

॥ श्रीः ॥

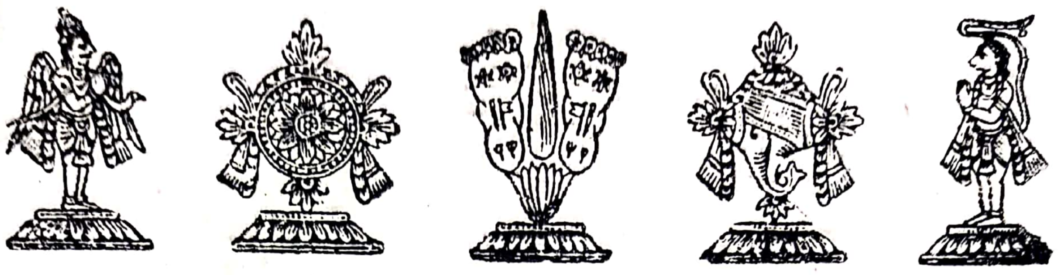

पदच्छेदाङ्कसहितम्

अर्थपञ्चकम्

श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्य वेदान्तप्रवर्तका-
चार्य श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य सत्सम्प्रदा-
याचार्य जगद्गुरुभगवदनन्तपादीय

श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य श्रीत्रिदण्डिस्वामि

विरचितया मर्मबोधिनी नाम्न्या
भाषाटीकया सहितम्

तच्च

छपरास्थ राजकीयसंस्कृतोच्चविद्यालयोपप्रधानाध्यापकेन
महायाज्ञिकेन वैदिकशिरोमणिना वेदाचार्य-पोष्टाचार्य
पं श्रीरामदेवाचार्येण (श्रीरामदेवशुक्लेन)
संशोधितम्

श्रीस्वामि राजेन्द्राचार्यसदुपदेशेन

पलामूमण्डलान्तर्गत रेहलापत्रालयक गुरहाग्रामयज्ञसमित्या
प्रकाशितम्

श्रीकृष्णजन्माष्टमी] [सम्वत् २०१७

Scanned with OKEN Scanner

मुद्रकः—सरस्वती प्रेस, छपरा, १९६०।

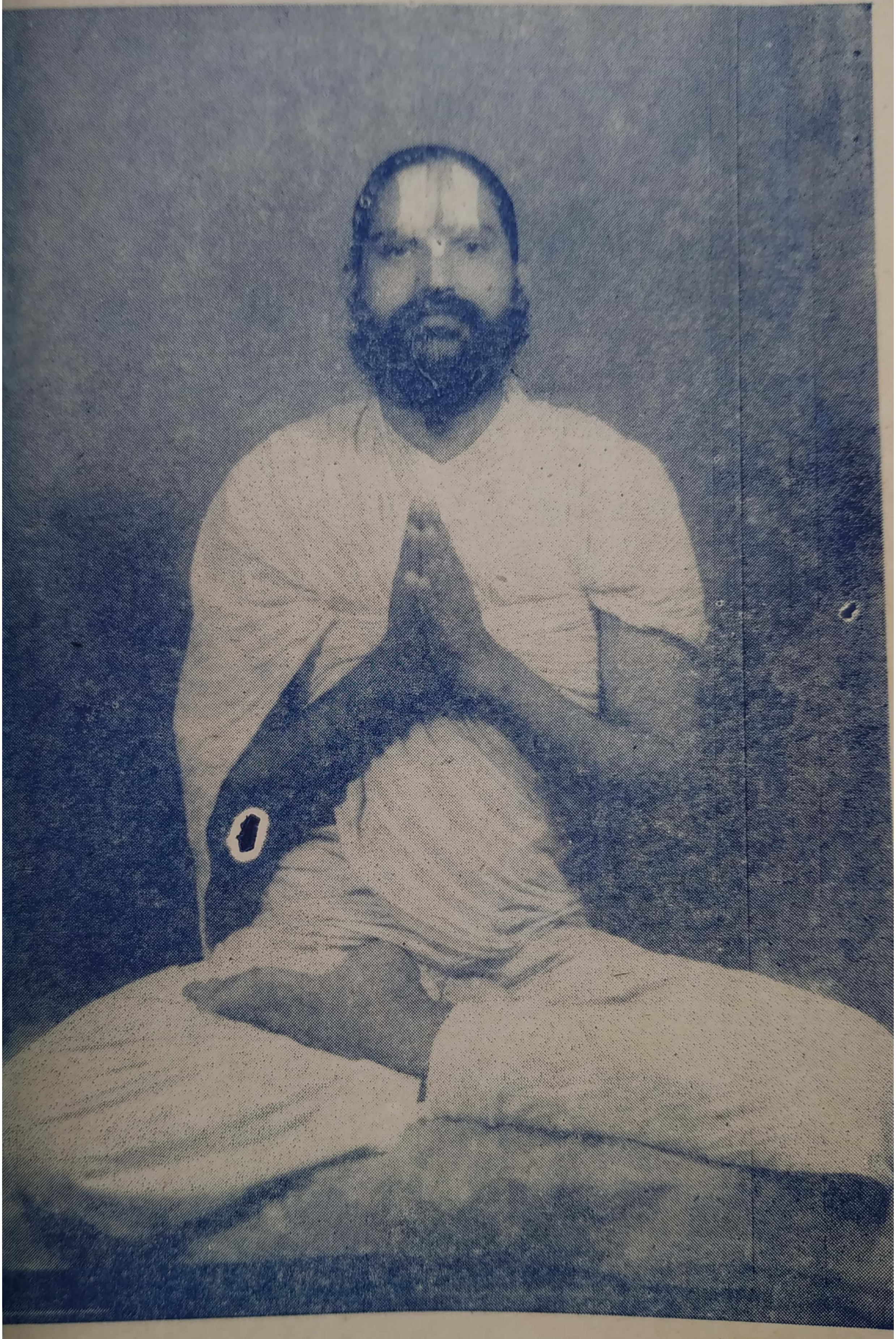

श्री १००८ जगदाचार्य श्रीत्रिदण्डिस्वामीजी महाराज के कृपापात्र
स्वामी श्रीराजेन्द्राचार्य

भूमिका

सभी अखिल माननीय भगवद्भागवताचार्य कैङ्कर्य परायण प्रिय सज्जनों को विदित ही है कि वर्त्तमानकाल में हिन्दी भाषा का प्रचार किस प्रकार उन्नति के शिखर पर पहुँच गया है। इसीसे प्रायः बड़े-बड़े विद्वान् सब वेद-शास्त्र, इतिहास, पुराण, व्याकरण, काव्य, नाटक, चम्पू और अपने-अपने सिद्धान्त के ग्रन्थों की टीका लोक में प्रचार करने के लिए हिन्दी भाषा में कर रहे हैं। परन्तु खेद के साथ लिखना पड़ता है कि श्रीसंप्रदाय में बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वान् होते हुए परम वैदिक इस सिद्धान्त के ग्रन्थों की टीका हिन्दी भाषा में नहीं करते हैं कि जिसमें सर्वसाधारण भागवत-जन अपने सिद्धान्त को वास्तविक में समझ लें। इसीसे मेरे मन में यह विचार हुआ कि पहले जिसके ज्ञान के बिना भागवत हो ही नहीं सकता है उस "अर्थपञ्चक" की कोई यदि सुन्दर टीका हो जाती तो बड़ा ही अच्छा होता। बस उसी समय सिताबदियारा के एक विन्ध्येश्वरीप्रसाद सिंहजी रईस मुझको मिले और उन्होंने कहा कि हमारे यहां बाबू गरीबा सिंह के टोला पर एक त्रिदण्डी स्वामीजी ठहरे हैं जिन्होंने पांच रोज की समाधि लगायी थी अब आश्विन शुक्ल पूर्णिमा को महाविष्णुयज्ञ की पूर्णाहुति बड़े समारोह के साथ होगी। बस मैंने समझ लिया कि अब मेरा मनोरथ पूर्ण होगा इस बात को सोच करके मैंने श्रीयतिवर की सन्निधि में जा

पहुँचा। जिनका बनाया हुआ "यतीन्द्रधर्ममार्तण्ड", "वैदिक-योगसंग्रह", "वैदिकमूर्तिपूजादर्श", "वैदिकश्राद्धदर्पण", "शास्त्रार्थदीपिका" और आलवन्दार स्तोत्र के "भावप्रकाशिका" टीका आदि हैं और जिनके योग के प्रभाव गाजीपुर जिले के खालिसपुर ग्राम के लोग जानते हैं कि स्वामीजी को अजगर ने काटा, परन्तु वह दुष्ट अपने ही आप मर गया श्रीस्वामीजी को कुछ भी नहीं हुआ और जिनका त्याग प्रशंसनीय है इस बात को आरा जिला में जो ईश्वरपुर ग्राम है वहां के लोग जानते हैं कि डुमरांव महाराजा केशव प्रसाद सिंहजी का बड़ा मैनेजर जो अंग्रेज था और आरा के कलक्टर साहब ने श्रीस्वामीजी का ईश्वरपुर में दर्शन किये और यह कहा कि—यदि जमीन या रुपया या और किसी चीज की जरूरत हो तो हम सबों को हुक्म दिया जाय तुरत तामील करेंगे। इसके उत्तर में श्रीस्वामीजी ने कहा कि शीघ्र यहां से आपलोग चले जाइये मुझको कुछ भी नहीं चाहिए। और जिनके निमन्त्रण से सिताब दियारा बाबू गरीबासिंह के टोला में जो महाविष्णुयज्ञ हुआ था उस यज्ञ में श्रीगङ्गाजी को निमंत्रण देकर उन्हें बुलाया और श्रीगङ्गाजी ने जल की धारा में जा करके समस्त जल का कार्य परिपूर्ण किया जिसको देखकर समस्त जनता आश्चर्ययुक्त हो गई। ऐसे जिनके कार्य आश्चर्यजनक हैं उन परम कारुणिक स्वामीजी से मैंने प्रार्थना करके अर्थपञ्चक की "मर्मबोधिनी" भाषा टीका करवायी, और बाबू गरीबासिंह

के टोला में महाविष्णुयज्ञ का महोत्सव देखा। जिस महोत्सव का वर्णन करने की मेरी शक्ति नहीं है और यज्ञान्त में श्रीस्वामीजी की आज्ञा से सिताब दियारा के निवासी अनन्य भक्तजनों ने "राम-कृष्ण" संस्कृत विद्यालय की स्थापना की, और परीक्षार्थी बीस छात्रों की वृत्ति भोजनार्थ देने के लिये स्वीकार किया। तथा "मर्मबोधिनी" टीका के साथ सर्वश्रेष्ठ उपादेय इस अर्थपञ्चक ग्रन्थ को प्रकाशित करने के लिये बाबू गरीबासिंह के टोला के निवासी समस्त जनता ने परिपूर्ण द्रव्य की सहायता की है। इससे वहांके नर-नारियों के शुद्ध सात्त्विक भाव को देखकर मेरा अन्तःकरण बारम्बार कोटिशः धन्यवाद देता है और मैं श्रीमन्नारायण भगवान् से सविनय नित्यप्रति प्रार्थना करता हूँ कि ऐसे ऐसे धर्मवीरों का सर्वदा धन-जन को बढ़ाते हुए निर्हेतुक दया करके समस्त भारतवासियों का मन ऐसे शुभ कार्य में सर्वदा आप लगाइये। इस टीका के करने में जिला आरा मुकाम ब्राह्मण (बाभन) गांवों के मठाधीश पं० यागेशाचार्यजी तथा मुकाम सिनहा के रईस बाबू राजकेश्वर सिंहजी और एकौना निवासी भागवत रामानुज श्रीनिवासदास जी ने पुस्तक के लिए सहायता दी है इन्हें हृदय से मैं धन्यवाद देता हूँ। शमित्यलम्

विनीत निवेदक भगवद्दासानुदास—

झलकानन्द ब्रह्मचारी

मुकाम (भृगुक्षेत्र) बलिया।

॥ श्रीः ॥

आमुखम्

अखिल ब्रह्माण्डनायक भगवान् श्रीमन्नारायण की असीम निर्हेतुकानुकम्पा से त्रिगुणातीत श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्य वेदान्तप्रवर्तकाचार्य श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य सत्सम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु भगवदनन्तपादीय श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य श्रीत्रिदण्डिस्वामीजी महाराज के प्रसादस्वरूप महामहिमशाली अष्टादश ग्रन्थरत्नों के निर्माता श्रीमल्लोकाचार्य विरचित अर्थपञ्चक की मर्मबोधिनी नामक टीका का तृतीय संस्करण आपलोगों के हाथ में समर्पित करते परम हर्ष हो रहा है।

अनादिकाल से जन्म मरण स्वरूप संसार के प्रपञ्च में पड़े हुए भावुक जीवों को मोक्ष की इच्छा स्वाभाविक है। शास्त्रकारों ने इसकी प्राप्ति के अनेक उपायों का वर्णन अपने ग्रन्थरत्नों में किया है। उनमें सर्वप्रथम स्थान अर्थपञ्चक के रचयिता श्रीमल्लोकाचार्यस्वामीजी का है। इन्होंने अनेक प्रमाणों से यह प्रमाणित किया है कि महाभागवत हुए बिना मोक्ष प्राप्ति कथञ्चिदपि सम्भव नहीं है और अर्थपञ्चक ज्ञान के बिना कोई महाभागवत नहीं हो सकता क्योंकि पराशरीय धर्मशास्त्र के उत्तरकाण्ड में लिखा है—

अर्थपञ्चकतत्वज्ञाः पञ्चसंस्कारसंस्कृताः ।
आकार त्रय सम्पन्नाः महाभागवताः स्मृताः ॥
(परा० धर्म० उत्तर० अ० १० श्लोक ६)

अर्थपञ्चक के तत्त्व को जाननेवाले, ताप, पुण्ड्र, नाम, मन्त्र और याग इन पांच संस्कारों से संस्कृत, तथा अनन्यार्ह-शेषत्व, अनन्यशरणत्व, और अनन्य भोग्यत्वरूप इन तीन संस्कारों से युक्त भावुक जीव को महाभागवत कहते हैं।

इस शास्त्र में निर्दिष्ट अर्थपञ्चक का ज्ञान मोक्ष प्राप्ति का प्रधान साधन है। इस अर्थपञ्चक के विषय में उन्होंने अपने अर्थपञ्चक नामक ग्रन्थ में "अर्थपञ्चकज्ञानं नाम–स्वस्वरूप–परस्वरूप–पुरुषार्थस्वरूप–उपायस्वरूप–विरोधिस्वरूपाणां च याथात्म्यज्ञानम्" ॥ अर्थात् (१) जीवात्मा के स्वरूप का ज्ञान (२) संसार में आवागमन से मुक्त करनेवाले परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान (३) संसार से मुक्त करनेवाले पुरुषार्थ स्वरूप का ज्ञान (४) संसार से छूट जाने के उपाय के स्वरूप का ज्ञान (५) संसार से मुक्त के बाधक पदार्थ का स्वरूप ज्ञान इन्हीं ज्ञानपञ्चक को अर्थपञ्चक कहते हैं। इन्हीं के यथार्थ ज्ञान से मनुष्य की मुक्ति हो सकती है। इन्हीं का वर्णन समस्त श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहासों में प्रतिपादित है। यथा—

प्राप्यस्य ब्रह्मणोरूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः। प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेस्तथा प्राप्तिविरोधि च ॥ वदन्ति सकला वेदाः

सेतिहासपुराणकाः । मुनयश्च महात्मानो वेदवेदार्थवेदिनः ॥
यह हारीतसंहिता का वचन है। इन प्रमाणों से अर्थपञ्चकज्ञान किये बिना मुक्ति की प्राप्ति असम्भव है।

अतः संसार दावानल से उत्तप्त मुमुक्षुमात्र के परम हितैषी श्री स्वामी राजेन्द्राचार्यजी की प्रेरणा से मु० गुरहा पो० रेहला जिला पलामू यज्ञसमिति द्वारा आर्थिक सहायता से इस ग्रन्थरत्न का प्रकाशन हुआ है। एतदर्थ उपर्युक्त समिति के सदस्यों को अन्तःकरण से धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी इस तरह के सहयोग से और भी ग्रन्थरत्नों का प्रकाशन होता रहेगा।

भगवद्दासानुदास,
रामदेवाचार्य, वेदाचार्य, पोष्टाचार्य,
सहायक प्रधानाध्यापक,
राजकीय संस्कृत विद्यालय,
छपरा

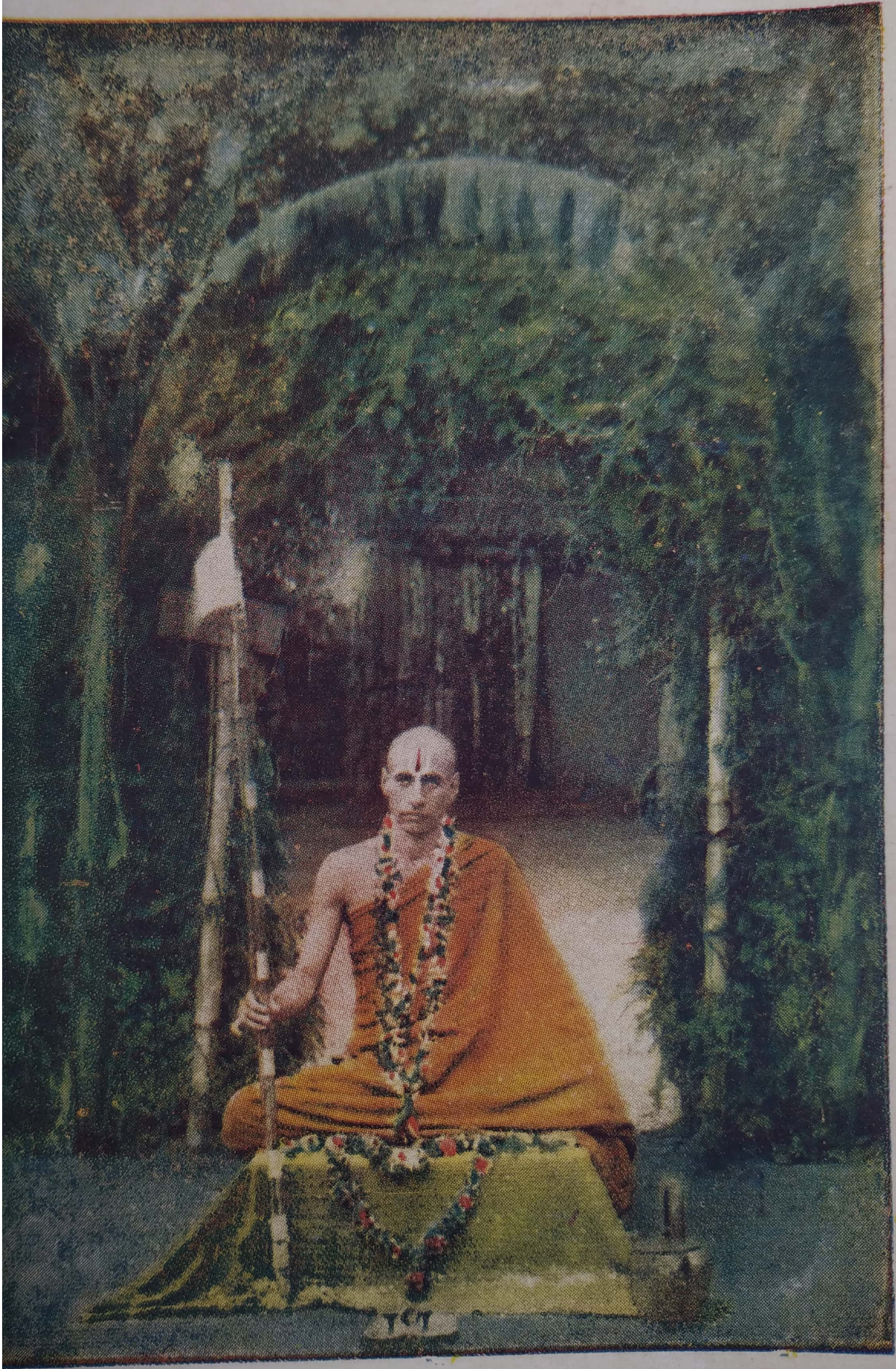

श्री १००८ जगद्गुरु त्रिदण्डीस्वामीजी महाराज

Scanned with OKEN Scanner

❀ श्रीमते रामानुजाय नमः ❀

अथ अर्थपञ्चकम्

मूल—अथ[1] मुमुक्षोः[2] संसारिणश्चेतनस्य[3] तत्त्वज्ञानो-[4] [5]
त्पत्त्योर्ज्जीवनसमयेऽर्थपञ्चकज्ञानोत्पत्तिरावश्यकी[6][7][8]॥ १

टीका— अखिल दुरितपुञ्जध्वंसनं देहभाजाम्।
भवजलनिधिपोतं पावनं पावनानाम् ॥
परमपुरुषधामप्रापकं स्वाश्रितानाम्।
यतिपतिपदपद्मं श्रेयसे संश्रयामि ॥१॥
लोकाचार्य्याय गुरवे कृष्णपादस्य सूनवे।
संसारभोगिसंदष्ट जीव जीवातवे नमः ॥

(अथ[1])— श्रीलोकाचार्यस्वामीजी संपूर्ण मुमुक्षुओं के कल्याण के लिये अर्थपञ्चक को करते हैं। जिस ग्रन्थ को प्रारंभ करने की इच्छा है उस ग्रन्थ की निर्विघ्नपरि समाप्ति के लिये वस्तु निर्देशात्मक ॥अथ॥ शब्द का प्रयोग ग्रन्थ के आदि में मङ्गलार्थ करते हैं। क्योंकि लिखा है कि ॐकारश्चाथ शब्दश्च-द्वावेतौब्रह्मणः पुरा। कण्ठं भित्त्वाविनिर्यातौ तस्मान्मांगलिका-वुभौ ॥ ॐकार और अथ शब्द ये दोनों सृष्टि के आदि में

ब्रह्मा के कण्ठ को भेदन करके निकले इससे ये दोनों माङ्गलिक हैं। इसीसे प्रायः महर्षियों ने अपने बनाये शास्त्रों के आदि में अथ शब्द का प्रयोग किये हैं। जैसे कि जैमिनी महर्षि प्रणीत पूर्व मीमांसा का पहला सूत्र अथातो धर्म जिज्ञासा ॥ तथा श्री वेदव्यास प्रणीत शारीरिक मीमांसा का पहला सूत्र अथातो ब्रह्म जिज्ञासा ॥१॥ और कणाद महर्षि प्रणीत वैशेशिक दर्शन का पहला सूत्र अथातो धर्मं व्याख्या स्यामः ॥१॥ तथा कपिल महर्षि प्रणीत सांख्यप्रवचन दर्शन का पहला सूत्र अथ त्रिविध दुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः ॥१॥ और महर्षि पतञ्जलि प्रणीत योगशास्त्र का पहला सूत्र अथ योगानुशासनम् ॥१॥ और भी इसी प्रकार से वेदाङ्ग जो व्याकरण का महाभाष्य है उसके आदि में अथ शब्द का ही मङ्गल पतञ्जलि महर्षि किये हैं जैसे कि (अथ शब्दानुशासनम्) यदि यहां पर कोई यह कहे कि अथ शब्द यहां मङ्गलार्थ नहीं है क्योंकि अथ शब्द का अर्थ श्रीपतञ्जलि महर्षि कहे हैं कि (अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते) अथ यह शब्द अधिकारार्थ प्रयोग किया है। तो इस प्रश्न का उत्तर यह है कि अथ शब्द अधिकारार्थ होने पर भी मङ्गलार्थ है। इस बात को नागेश भट्ट स्पष्ट भाष्यप्रदीप में कहे हैं कि—"प्रारंभ क्रिया विषयत्व द्योतकस्यापि अथ शब्दस्यान्यार्थं नीयमानदध्यादिवन्मङ्गलत्वमपीत्युभयार्थमथशब्दः प्रयुज्यत इति फलितम् ॥" प्रारंभ क्रिया विषयक द्योतक अथ शब्द मङ्गलार्थ भी है जैसे दूसरे के लिये नीयमान दधि आदिक

इससे अधिकारार्थ और मङ्गलार्थ इन दोनों अर्थों के लिये अथ शब्द का प्रयोग किया गया है। अन्यथा यदि केवल अधिकारार्थ माना जाय तो महाभाष्य में मङ्गलाचरण का अभाव मानना पड़ेगा। यदि यह कोई कहे कि वस्तुतः महाभाष्य में मङ्गल नहीं है तो यह कथन अत्यन्त प्रमादयुक्त है क्योंकि महर्षि पतञ्जलिजी महाभाष्य के पहला अध्याय पहला पाद तीसरा आह्निक में 'वृद्धिरादैच्' पाणि० अ० १, पा० १, सू० १ ॥ स्वयं कहे हैं कि—"मङ्गलादीनिह शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषकाणि च भवन्त्यायुष्मत्पुरुषाणिचाध्येतारश्च वृद्धियुक्ता यथास्युरिति ॥१।१।३॥" शास्त्र के आदि में मङ्गल अवश्य करना चाहिये क्योंकि उसको पढ़ने पढ़ानेवाले वीर दीर्घायु और वृद्धियुक्त जिससे होवें ॥३॥ ऐसे कहनेवाले महर्षि अपने ग्रन्थों में अवश्य मङ्गलार्थ अथ शब्द का प्रयोग किये हैं। वैसे ही लोकाचार्य स्वामीजी मङ्गलार्थ अर्थ पञ्चक के आदि में अथ शब्द का प्रयोग किये हैं। यहां पर यह शङ्का होती है कि मङ्गल विघ्न विघातया समाप्ति के प्रति कारण नहीं है क्योंकि नास्तिकों की बनाई हुई जो किरणावली है उसमें मङ्गल नहीं है तौभी समाप्ति देखी जाती है और कादम्बरी में बहुत मङ्गल करने पर भी समाप्ति नहीं देखी जाती है इससे मङ्गल नहीं करना चाहिये। इस शङ्का का समाधान यह है कि— बलवत्तर मङ्गल विघ्न विघातया समाप्ति का कारण है क्योंकि जो अधिक बलवाला होता है वह पछाड़ता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि कादम्बरी

में मंगल से प्रबल विघ्न था इससे समाप्ति न हुई और किरणावली में जन्मान्तरीय मंगल था या विघ्न का अत्यन्ताभाव था इससे उसकी समाप्ति हो गई। प्राचीन लोग विघ्नध्वंस मंगल का द्वार कहते हैं। और नव्य लोग तो मंगल का विघ्न-ध्वंस फल मानते हैं ग्रन्थ की समाप्ति बुद्धि प्रतिभा आदिक कारण कलाप से होती है। यदि यह कोई कहे कि जिसको स्वतः सिद्ध विघ्न विरह था वह यदि मंगल किया तो निष्फल हुआ तो इसका उत्तर यह है कि निष्फल नहीं है क्योंकि विघ्न की शङ्का से वह मंगल किया है। ग्रन्थ के आदि में मंगल अवश्य करना चाहिये इस विषय में श्रीकपिल महर्षि सांख्य दर्शन अध्याय पांचवें के पहले सूत्र में कहे हैं कि मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात्फलदर्शनाच्छ्रुतितश्चेच्चेति सां० अ० ५ सू० १। मंगल अवश्य करना चाहिये क्योंकि लिखा है कि ग्रन्थादौ-ग्रन्थमध्ये ग्रन्थान्तेचमङ्गमाचरणीयम्। ग्रन्थ के आदि मध्य अन्त में मंगल करना चाहिये। और अनुमान से भी मंगल सफल सिद्ध होता है जैसे कि— मङ्गलं समाप्तिफलकं समाप्त्य-न्याफलकत्वेसति सफलत्वात्॥ यह अनुमान का स्वरूप है।

मंगलं सफलं अविगीत-शिष्टाचार-विषयत्वात्। और इस विषय में श्रुति प्रमाण भी है कि समातिकामो मङ्गलामाचरेत्। समाप्ति की इच्छावाला मंगल करे। इससे मंगल अवश्य करना चाहिये ग्रन्थ के विस्तार के भय से अधिक नहीं लिखता हूँ।

अब यहां पर यह प्रश्न है कि मंगल अपने मन में कर लेते फिर

ग्रन्थ में क्यों लिखें। इसका उत्तर यह है कि हमारे लिखे हुए मंगल को देखकर वैदिक श्री सम्प्रदायावलम्बी जितने श्रीवैष्णव हैं वे भी मंगल को इसी प्रकार से करेंगे इस शिष्य शिक्षा के लिये अथशब्दात्मक मंगल प्रथम अपने ग्रन्थ में लिखे हैं। (मुमुक्षोः[२]) मोक्ष की इच्छा करनेवाले (संसारिणः[३]) अनादि-काल से जन्म मरण रूप ससार में पड़े हुए (चेतनस्य[४]) जीवों के (तत्त्वज्ञानोत्पत्त्या[५]) यथार्थ ज्ञान की उत्पत्ति से (उज्जीवन[६]-समये) उज्जीवन होने के समय में (अर्थपञ्चकज्ञानोत्पत्तिः[७]) अर्थपञ्चक के ज्ञान की उत्पत्ति (आवश्यकी[८]) अवश्य होनी चाहिये। क्योंकि बिना अर्थपञ्चक के तत्त्व जाने महाभागवत नहीं हो सकता है यह पराशरीय धर्मशास्त्र के उत्तर खण्ड में लिखा है कि अर्थपञ्चकतत्त्वज्ञाः पञ्चसंस्कारसंस्कृताः। आकारत्रयसंपन्ना महाभागवताः स्मृताः॥ पराश० अध्या० १० श्लो० ९॥ अर्थपञ्चक के तत्त्व को जानता हो तथा तापपुण्ड्र नाम मन्त्र याग इन पांचों संस्कारों से संस्कृत हो और अनन्यार्हशेषत्व, अनन्यशरणत्व, अनन्यभोग्यत्वरूप, इन तीन आकारों से युक्त हो उसको महाभागवत कहते हैं॥९॥ इस कारण से और समस्त शास्त्रों में अर्थपञ्चक ही प्रतिपादित होने से इसका ज्ञान अवश्य होना चाहिये। समस्त श्रुति स्मृति इतिहास पुराणों में अर्थपञ्चक का ही अर्थ प्रतिपादित है इसमें प्रमाण—प्राप्यस्य ब्रह्मणोरूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः। प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेस्तथा प्राप्तिविरोधि च॥ वदन्ति सकला वेदाः

सेतिहास पुराणकाः। मुनयश्च महात्मानो वेदवेदार्थ वेदिनः॥ यह हारीत संहिता का वचन है। इन्हीं आशयों से "अर्थ-पञ्चक ज्ञानोत्पत्तिरावश्यकी" यह पद लोकाचार्य स्वामीजी कहे हैं। आवश्यकी। इस पद तक अनुबन्ध चतुष्टय भी श्रीपूज्यपाद जी दिखाये हैं। अनुबन्ध का लक्षण भी यह लिखा है— (अनुबन्धत्वञ्च प्रवृत्तिप्रयोजकज्ञानविषयत्वम्) और चतुष्टय चार ये हैं कि—अधिकारी च सम्बन्धो विषयश्च प्रयोजनम्। अवश्यमेव कर्तव्यमनुबन्धचतुष्टयम्॥ अधिकारी १ सम्बन्ध २ विषय ३ प्रयोजन ४ ये चार ग्रन्थ में अनुबन्ध अवश्य करना चाहिये। तो इस नियमानुसार अर्थपञ्चक ज्ञान के जिज्ञासु मुमुक्षु जीव इस ग्रन्थ का अधिकारी है और प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है। तथा अर्थपञ्चक विषय है। और भगवत् के नित्य कैङ्कर्य्य रूप मोक्ष प्राप्ति प्रयोजन है। अब अर्थपञ्चक के आगे शङ्का समाधान को नियम से कहते हैं॥१॥

अर्थ[१] पञ्चकज्ञानं नाम स्वस्वरूप[२] परस्वरूप[३] पुरुषार्थस्वरूपोपायस्वरूपविरोधिस्वरूपाणां च य[४]थात्म्यज्ञानम् ॥२॥

टीका—(अर्थपञ्चकज्ञानम्[१]) अर्थपञ्चकज्ञान (नाम[२]) किसको कहते हैं। शङ्का होने का कारण यह है कि शरीरवादी पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पांच अर्थों के ज्ञान

को मानते हैं। और वैद्य लोग जड़, छिलका, पत्र, फूल, फल इन पांचों के ज्ञान को अर्थपञ्चक मानते हैं इत्यादिक शङ्काओं को दूर करते आने हो श्रीलोकाचार्यजी बता रहे हैं कि (स्व[3] स्वरूप परस्वरूप पुरुषार्थस्वरूपो पाय स्वरूप विरोधिस्वरूपा-णाम्) जीव जो मैं हूँ सो मेरा स्वरूप क्या है ॥१॥ तथा संसार से हमको पार करनेवाले परमात्मा का स्वरूप क्या है ॥२॥ हम सबों के चाहने के चीज के स्वरूप क्या है ॥३॥ इस संसार से छूट जाने के उपाय का स्वरूप क्या है ॥४॥ और मुझे इस संसार से जो नहीं छूटने देता है उस विरोधि का स्वरूप क्या है ॥५॥ (यथात्म्य[4] ज्ञानम्) इन पांचों के ठीक ठीक ज्ञान को अर्थपञ्चक ज्ञान कहते हैं। यहां जीव के विषय में बहुत से आधुनिक लोग यह कहते हैं कि जैसे रस्सी में सर्पज्ञान और सीप मे चान्दी का ज्ञान झूठा होता है वैसे ही केवल एक ब्रह्म में जीव मालूम होना झूठा है वास्तविक में एक ब्रह्म है और कोई भी तत्व नहीं है। इसका उत्तर यह है कि कहीं पर सांप और चान्दी है सच्चा तभी तो ज्ञान हुआ वैसे ही जीव भी कहीं सच्चा मानना पड़ेगा। और यह भी बात है कि जो लोग केवल एक ब्रह्म को सत्य मानते हैं उनके मत में भ्रम नहीं बन सकता क्योंकि यदि देखनेवाला कोई न हो तो रस्सी में सर्पज्ञान नहीं हो सकता है। यदि भ्रम मान लिया जाय तो ब्रह्म ही में भ्रम मानना पड़ेगा और ब्रह्म भ्रमरहित है यह सबका सिद्धान्त है इससे जीव को अनादि सत्य मानना चाहिये।

अब वादि लोग यहां पर यह युक्ति दिखाते हैं कि जैसे सूर्य एक हैं तौभी उनके प्रतिबिम्ब अनेक घटों पर दिखाई पड़ता है वैसे ही एक ब्रह्म के अनेक प्रतिबिम्ब स्थानी जीव हैं। यह विषम दृष्टान्त है कारण कि सूर्य आकाश के एक देश में रहते हैं और गोलाकार दिखाई पड़ते हैं और उनसे अन्यत्र जगह खाली है जहां कि छाया या सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है। वैसा ब्रह्म नहीं क्योंकि वह सर्वदेशी है इससे ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जीव नहीं है बल्कि जैसे ब्रह्म अनादि है वैसे ही जीव भी अनादि है यह लिखा है कि— अजोनित्यःशाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ कठोपनि० अ० १ वल्ली० २ मं० १८॥ यह जीव अजन्मा नित्य सर्वकाल में रहनेवाला पुराण है शरीर के मरने पर भी नहीं मरता है॥१८॥ और भी लिखा है कि—ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहाँ प्रविष्टौ परमे परार्ध्ये। छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः॥ कठ० अ० १ व० ३ मं० १॥ इस मन्त्र में स्पष्ट एक को छाया और दूसरे को आतप या गुहा में प्रवेश दोनोंको कहा गया है और मुण्डक में लिखा है कि—द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व-जाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति॥ मुण्ड० ३ खं० १ मं० १॥ शरीररूप एक ही वृक्ष में ये जीव और ब्रह्म दोनों मिलकर रहते हैं तथा दोनों का साथ और मित्रता है परन्तु इन दोनों में से जीवात्मा कर्म फल को स्वादवाला समझकर खाता है और परमात्मा न खाता हुआ अत्यन्त

प्रकाशस्वरूप बना रहता है ॥१॥ और श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी है कि ज्ञाज्ञौद्वावजावीशानीशौ ॥ श्वेताश्व० अ० १ मं० ६ ॥ दो चेतन अनादि हैं एक सर्वज्ञ और ईश है और दूसरा अल्पज्ञ तथा अनीश है ॥६॥ और वेदान्त सूत्र में भी ब्रह्म से अलग जीव बताया गया है ॥ अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति ॥ शारीरिक मी० अ० १ पाद १ सूत्र १६ ॥ अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ॥ शा० अ० १ पा० १ सू० २० ॥ भेदव्यपदेशाच्चान्यः ॥ शा० अ० १ पा० १ सू० २१ ॥ इस जीव में ब्रह्म के संयोग उपनिषद शासन करता है ॥१६॥ भीतर ब्रह्म के धर्म उपदेश होने से ॥२०॥ और भेदव्यपदेश होने से जीव ब्रह्म से न्यारा है ॥२१॥ गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ॥ शा० अ० १ पा० २ सू० ११ ॥ निश्चय करके दोनों जीवात्मा परमात्मा शरीर के गुहा में प्रवेश किये हैं क्योंकि दोनों का दर्शन होता है ॥११॥ और भगवद्गीता में लिखा है कि— ममैवांसोजीवलोके जीवभूतः सनातनः ॥ गी० अ० १५ श्लो० ७ ॥ इस जीवलोक में मेरा ही अंश अनादि जीव है ॥७॥ और भी लिखता है कि—द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षर-श्चाक्षर एव च । क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ गी० अ० १५ श्लो० १६ ॥ लोक में दो प्रकार के पुरुष हैं एक क्षर और दूसरा अक्षर है उसमें ब्रह्मा से लेकर चींटी पर्यन्त क्षर पुरुष हैं और कूटस्थ मुक्तात्मा अक्षर पुरुष हैं यह ऋषियों ने कहा है ॥१६॥ और भी लिखा है कि—"पृथगात्मानं प्रेरितारंच मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति" श्वेताश्व० अ० १ मं० ६ ॥

अपने को और परमात्मा को पृथक् मानकर जीव तब मोक्ष पाता है ॥६॥ वालाग्रशतभागस्य शतधाकल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः॥ श्वे० अ० ५ मं० ६ ॥ बाल के अग्रभाग के सौवां भाग का सौवां हिस्सा उसी भाग को जीव जानना॥६॥ और गौतम महर्षि भी कहे हैं कि—इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःखज्ञानानि (आत्मनो लिंगम्) इति॥ न्याय० अ० आह्नि० १ सू० १०॥ (इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान ये जीवात्मा के चिह्न हैं) ॥१०॥ तथा कणाद महर्षि कहे हैं कि— प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराःसुखदुःखेच्छा द्वेषप्रयत्नाश्च (आत्मनो लिङ्गानि)॥ वैशे० अ० ३ आह्नि० २ सू० ४॥ प्राणवायु तथा अपानवायु और आँख मूँदना खोलना जीना मन की गति और इन्द्रियान्तरविकार तथा सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न ये सब जीवात्मा के चिह्न हैं ॥४॥ और कपिल महर्षि भी कहे हैं कि—"पुरुषबहुत्वं व्यवस्थातः॥ सां० अ० ६ सू० ४५॥ जीव बहुत हैं व्यवस्था होने से ॥४५॥ नाद्वैतमात्मनोलिङ्गात्तद्भेदप्रतीतेः॥ सां० अ० ५ सू० ६१॥ अद्वैतमत ठीक नहीं है आत्मा के चिह्न होने से और प्रत्यक्ष भेद प्रतीत होने से ॥६१॥ वामदेवादिर्मुक्तोनाद्वैतम्॥ सां० अ० १ सू० १५८॥ वामदेव आदिक मुक्त हो गये हैं इससे भी अद्वैत मत ठीक नहीं है ॥१५८॥ जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम्॥ सां० अ० १ सू० १५०॥ जन्म मरण आदि व्यवस्था होने से जीवात्मा बहुत सिद्ध होता है ॥१५०॥ अर्थात् केवल

एक ब्रह्मतत्त्व अनादि मानने से जन्म, मरण, सुखी, दुःखी, धनी, दरिद्र, बन्धन, मोक्ष, गुरु, शिष्य इत्यादिक व्यवस्था नहीं हो सकती है। अतः अनन्त अनादि जीव मानना परम वैदिक मत है। अब बहुत से लोग शरीर, इन्द्रिय और मन को जीवात्मा मानते हैं उसका उत्तर यह है कि—शरीरस्य न चैतन्यं मृतेषु व्यभिचारतः। तथात्वं चेदिन्द्रियाणामुपघाते कथं स्मृतिः ॥४८॥ मनोऽपि न तथा ज्ञानाद्यनध्यक्षं तदा भवेत् ॥ कारिकावली० ४९ ॥ शरीर चेतन नहीं है क्योंकि मृतक शरीर में चेतनता नहीं पाई जाती है। इसी प्रकार से इन्द्रियां भी चेतन नहीं अन्यथा इन्द्रियों के नाश होने पर भी पूर्व प्रत्यक्ष किये हुये चीजों का स्मरण कैसे होता है ॥४८॥ इसी प्रकार से मन भी आत्मा नहीं है अन्यथा ज्ञानादिकों के अनध्यक्ष हो जायेगा ॥४९॥ इसी प्रकार से (सुषुप्तावहंनासम्) इस प्रतीति से शून्यवादी माध्यमिक का मत तथा (क्रमादयं घट इत्यहमिति च ॥ इस प्रवृत्ति विज्ञान तथा आलय विज्ञान के भेद से दो प्रकार के क्षणिक विज्ञानस्वरूप आत्मा अन्य नहीं यह योगाचार के मत तथा "ज्ञानाकारानुमेयक्षणिकबाह्यार्थ एवात्मा" यह सौत्रान्तिक के मत तथा "क्षणभंगुरवादी क्षणिक बाह्यार्थ एवात्मा" यह वैभाषिक के मत तथा "देहातिरिक्तो देहपरिणाम आत्मा" यह दिगम्बर मतावलम्बी जैन के मत भी श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण युक्ति से विरुद्ध होने के कारण ठीक नहीं है यह श्रीभाष्य में स्पष्ट प्रत्याख्यान किया गया

है ग्रन्थ के विस्तार-भय से अधिक मैं नहीं लिखता हूँ। पूर्वोक्त कथन से यह सिद्ध हो गया कि ब्रह्म से न्यारा जीव है और सबसे पहले स्वस्वरूप का ज्ञान होना चाहिये। इस उपदेश के लिये ग्रन्थकर्ता अर्थपञ्चक में पहले स्वस्वरूप की गणना किये हैं।

हा! करालकलिकाल के प्रभाव से परस्वरूप की सत्ता में भी आजकल सन्देह हो गया है इससे बहुत से लोग संसार का कर्त्ता परमेश्वर को नहीं मानते हैं। और यों कहते हैं कि पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश के परमाणु अनादि हैं और वेही जब इकट्ठा हो जाते हैं तो अपने आप संसार हो जाता है इससे संसार का कारण ब्रह्म को मानना व्यर्थ है। ऐसे कहने वालों से यह कहना चाहिये कि आपके परमाणु रूपवाले हैं या बिना रूप के। यदि यह कहिये कि बिना रूप के हैं तो यह बताइये कि रूपरहित परमाणुओं के इकट्ठे होने से रूपवाला संसार कैसे बन गया। इस दोष को हटाने के लिये यदि यह कहिये कि रूपवाले परमाणु हैं तो यह याद रखिये कि— "यत्र यत्र रूपत्वं तत्र तत्रानित्यत्वम्" संसार में जितने रूपवाले चीज हैं वे सब अनित्य हैं। अर्थात् उनकी उत्पत्ति और नाश अवश्य होता है तो आपकी परमाणु की भी उत्पत्ति कहीं से होगी उसीको हम सब ब्रह्म कहते हैं। उपनिषदों में ब्रह्म से संसार की उत्पत्ति लिखी हुई है कि—यतो वा इमानिभूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्वि-

Scanned with OKEN Scanner

जिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति ॥ तैत्तिरीय० भृगुव० ३ अनु० १ ॥ जिससे समस्त संसार की उत्पत्ति, पालन, संहार और मोक्ष होता है उसको जानने की इच्छा करो वही ब्रह्म है ॥१॥

और भी लिखा है कि—यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति। यथा सतःपुरुषात्केशलोमानि तथा चरात्संभवतीह विश्वम् ॥ मुण्ड० १ खं० १ मं० ७ ॥ जैसे जीव विशिष्ट मकरी अपने पेट से सूत को बाहर निकालती है और लील लेती है और जैसे बीज बीजविशिष्ट पृथ्वी में औषधियां उत्पन्न होती हैं और जैसे जीव विशिष्ट देह से केश, लोम, नख उत्पन्न होते हैं वैसे ही सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट अविनाशी श्रीमन्नारायणदेव से यह स्थूल प्रपञ्चरूप संसार उत्पन्न होता है ॥७॥ यह शारीरिक मीमांसा में भी लिखा है कि—जन्माद्यस्य यतः ॥ शा० अ० १ पा० सू० २ ॥ इस समस्त संसार का जिससे उत्पत्ति, पालन, संहार और मोक्ष होता है ॥२॥ यदि यह कोई शङ्का करै कि तब तो बनाने में परिश्रम परमात्मा को होता होगा। और किसी को धनी किसी को दरिद्र बनाया तो वैषम्य और नैर्घृण्य दोष उसको लगता होगा। तो इस प्रश्न का उत्तर श्रीवेदव्यासजी दिये हैं कि—लोकवत्तु लीला कैवल्यम् ॥ शा० अ० २ पा० १ सू० ३३ ॥ वैषम्यनैर्घृण्येन सापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयति ॥ सू० ३४ ॥ जैसे लोक में छोटे छोटे बच्चों को घरौना बनाने में परिश्रम नहीं होता है वैसे ही केवल लीला से परमात्मा संसार को बनाते हैं इससे

Scanned with OKEN Scanner

उनको थकावट नहीं होती है ॥३३॥ और निश्चय करके शास्त्र बताता है कि कर्मानुसार परमात्मा धनी-दरिद्र बनाता है, इससे वैषम्य और नैघृण्य दोष ब्रह्म को नहीं लगते हैं ॥३४॥ इसी आशयों से पूज्यपाद अर्थपञ्चक में दूसरा परस्वरूप का ज्ञान कहे हैं। आगे अब पांचों अर्थों के पांच पांच भेद निरूपण करेंगे ॥२॥

एतेष्वेकैको विषयः पञ्चधा भवति ॥३॥

टीका—(एतेषु[१]) इन पांच अर्थों का (एकैकः[२]) हर एक का (विषयः[३]) विषय (पञ्चधा[४]) पांच पांच प्रकार का (भवति[५]) होता है। अर्थात् स्वस्वरूप १, परस्वरूप २, पुरुषार्थस्वरूप ३, उपायस्वरूप ४, विरोधिस्वरूप ५। इन पांचों अर्थों के पांच पांच प्रकार के भेद होने से ये पचीस प्रकार के होते हैं जिनको कि आगे कहते हैं ॥३॥

स्वस्वरूपमित्यात्म स्वरूपमुच्यते तच्चात्म स्वरूपं नित्य मुक्तबद्ध केवल मुमुक्षु भेदात् पञ्चविधम् ॥४॥

टीका— (स्वस्वरूपम्[१]) स्वस्वरूप (इति[२]) इस पद से (आत्मस्वरूपम्[३]) जीवात्मा का स्वरूप (उच्यते[४]) कहा जाता है कारण कि स्व शब्द का आत्मा १, आत्मीय २, ज्ञाति ३,

धन ४ ये चार अर्थ होने पर भी प्रथम उपस्थित जो आत्मा अर्थ है वही करना प्रकरण के अनुसार न्याय है, (तत्[५]) वह (च[६]) भी (आत्मस्वरूपम्[७]) जीवात्मा का स्वरूप (नित्य[८] मुक्तबद्धकेवलमुमुक्षुभेदात्) नित्य १, मुक्त २, बद्ध ३, केवल ४, मुमुक्षु ५ इन भेदों से (पञ्चविधम्[९]) पांच प्रकार का है। नित्य जीवों में यह प्रमाण है कि—"नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेकोबहूनां यो विदधाति कामान्" ॥ कठो० अ० २ व० ५ मं० १३ ॥ जो एक नित्य चेतन परमात्मा बहुत से चेतन नित्य जीवों की कामनाओं को परिपूर्ण करते हैं ॥१३॥ और मुक्तों का भी वर्णन है कि—"यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्" ॥ मुण्ड० ३ खं० २ मं० ८ ॥ जैसे बहती हुई नदियां अपने नाम और रूप को छोड़कर समुद्र में जाकर मिल जाती हैं वैसे ही विद्वान् जीव नाम और प्राकृत रूप से रहित हो करके ब्रह्मादिक देव से परे दिव्य श्रीमन्नारायण भगवान् को प्राप्त कर लेता है ॥८॥ और भी लिखा है कि—"ब्रह्मविदाप्नोति परम। सोऽश्नुते सर्वान्कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति" ॥ तैत्तिरीयो० ब्रह्मानन्दवल्ली० २ अनुवा० १ ॥ ब्रह्मवेत्ता जीव मोक्ष को पाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है। वह मुक्त जीव ब्रह्म के साथ समस्त भोगों को भोगता है ॥१॥ और वेदान्तदर्शन में भी लिखा है कि—"मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात्" ॥ शारी० अ० १ पा० ३ सू० २ ॥ मुक्तों को ब्रह्म के पास जाने के

व्यपदेश होने से ॥२॥ जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च ॥ शारी० अ० ४ पा० ४ सू० १७ ॥ मुक्त जीव संसार को बना नहीं सकता है क्योंकि ब्रह्म का प्रकरण होने से और जीव के असन्निहित होने से ॥१७॥ भोग्यमात्रसाम्यलिङ्गाच्च ॥ शारी० अ० ४ पा० ४ सू० २१ ॥ अनावृत्तिश्शब्दादनावृत्तिश्शब्दात् ॥ सू० २२ ॥ मुक्तजीव का केवल भोग में ब्रह्म के समान चिह्न पाया जाता है और अंश में ब्रह्म के तुल्य नहीं होता है ॥२१॥ मुक्तजीव का जन्म-मरण नहीं होता है शब्द प्रमाण होने से ॥२२॥ और बद्धजीव तो प्रत्यक्ष ही बहुत से दिखाई पड़ते हैं तौभी बद्ध का वर्णन है कि— अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः। दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा ॥ कठो० अ० १ वल्ली० २ मं० ५ ॥ सुत वित्त नारी रूप अविद्या के भीतर वर्तमान स्वयं धीर अपने आप पण्डित मानी काम क्रोधादिकों से परिपूर्ण मूढ लोग विषयों को प्राप्त करते हैं और उसीसे वे आनन्द चाहते हैं जैसे अन्धे को जन्मान्ध राह बतावे वही दशा उनलोगों की है ॥५॥ केवल जीव सांख्य शास्त्र में कहा गया है। अब मुमुक्षु को देखिये कि यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥ श्वेताश्व० अध्याय ६ मं० १८ ॥ जो श्रीमन्नारायण भगवान् सृष्टि के आदि में ब्रह्मा को उत्पन्न किये और ऋग्वेद १ यजुर्वेद २ सामवेद ३ अथर्ववेद ४ इन चारों

वेदों को लायें उस आत्मबुद्धि प्रकाश श्रीमन्नारायण देव की शरणागति मुमुक्षु मैं करता हूँ। ॥१८॥ और श्रीमद्भागवत में लिखा है कि—मुमुक्षवो घोररूपान्हित्वा भूतपतीनथ। नारायण-कलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः॥भाग० स्कं० १ अ० श्लो० २६॥ मुमुक्षु सब घोर रूप तमोगुणी भूतपतियों को त्याग करके असूयारहित निश्चय करके शान्तनारायण की कला को भजते हैं ॥२६॥ इन पूर्वोक्त प्रमाणों से स्पष्ट नित्य १ मुक्त २ बद्ध ३ केवल ४ मुमुक्षु ५ ये पांच प्रकार के जीव सिद्ध होते हैं। अब आगे परस्वरूप पांच प्रकार का वर्णन करते हैं ॥४॥

परस्वरूपं[1] परव्यूह[2] विभवान्तर्य्याम्यर्चावतारभेदात्पञ्चविधम्[3] ॥५॥

टीका—(परस्वरूपम्[1]) परमात्मा का स्वरूप (परव्यूहविभवान्तर्य्याम्यर्चावतारभेदात्[2]) पर १ व्यूह २ विभव ३ अन्तर्य्यामि ४ अर्चावतार ५ इनमें दो से (पञ्चविधम्[3]) पांच प्रकार का है। पर परमात्मा का स्वरूप लिखा है कि— तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमंचदैवतम्। पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥ श्वेताश्व अध्याय ६ मं० ७॥ न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च ॥८॥ न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके न चेशितानैवच-

तस्य लिङ्गम् । सकारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता नचाधिपः ॥९॥ स विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालोगुणी सर्वविद्यः । प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥१६॥ समस्त मालिकों का बड़ा मालिक तथा इन्द्रादि देवों के देव प्रजापतियों के रक्षक और ब्रह्मादि देवों से परे सबके स्तुति करने योग्य भुवनों के स्वामी उस पर परमात्मा देव को हम सब प्राप्त करें ॥७॥ उस पर परमात्मा का कार्य या कारण नहीं है तथा उनके बराबर या अधिक नहीं है अनेक प्रकार के उनकी पराशक्ति सुनी जाती है और ज्ञान बल क्रियायें उनमें स्वाभाविकी हैं ॥८॥ उस पर परमात्मा का रक्षक लोक में कोई नहीं है न कोई उसका स्वामी है और न तो उसका लिङ्ग है वह सबका कारण है तथा इन्द्रियों के स्वामियों का अधिप है और पर परमात्मा का उत्पादक और मालिक कोई नहीं है ॥९॥ वह पर परमात्मा विश्व का कर्ता तथा विश्व को जाननेवाला आत्मयोनि ज्ञाता कालों का काल गुणवाला सर्ववेत्ता है और प्रधान तथा जीवात्मा का पति गुणेश तथा संसार के मोक्ष स्थिति बन्धन का कारण है ॥१६॥ और वेदान्तदर्शन में लिखा है कि—अत्ता चराचरग्रहणात् ॥ शारी० अध्याय १ पा० २ सू० ९ ॥ चर अचर ग्रहण करने से परमात्मा भक्षण करनेवाला है ॥९॥ ज्ञोऽतएव ॥ शारी० अ० २ पा० ३ सू० १८ ॥ इससे परमात्मा ज्ञाता है ॥१८॥ कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात् ॥ शा० अ० २ पा० ३ सू० ३३ ॥ शास्त्रार्थवत्त्व से परमात्मा विश्व का

कर्ता है ॥३४॥ अब व्यूह को कहते हैं कि—"व्यूहावस्थासु तिष्ठ्सु गुणद्वयमधिष्ठितम्। प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च तथा संकर्षणो विभुः॥" पराशरी० उत्तरखं० अ० ६ श्लो० ६८॥ तीनों व्यूहावस्था में गुणद्वय अधिष्ठित प्रद्युम्न १ अनिरुद्ध २ और संकर्षण ३ हैं ॥६८॥ अब विभव को कहते हैं कि—"प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्येण मृगोनभीमः कुचरो गिरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्व-धिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥" शुक्ल यजु० अ० ५ मं० २०॥

मृग के समान वह विष्णु भगवान् अपने पराक्रम से स्तुति को प्राप्त होते हैं। नृसिंहरूप से भीम, मत्स्य कच्छप, वाराहादि रूप से मिट्टी खाने और पृथिवी में विचरने से कुचर, तथा वेङ्कटाद्रि में स्थित रहने से गिरिष्ठ हैं, जिस विष्णु के बड़े तीन पाद-विक्षेप में समस्त भुवन कम्पित होते हैं या बसते हैं ॥२०॥ अब अन्तर्यामी को कहते हैं कि—"एष आत्मा अन्तर्याम्यमृतः" यह परमात्मा अन्तर्यामी अमृत है। और भी लिखा है कि—

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः॥ श्वेता० अ० ४ मं० १७॥ ये विश्वकर्मा परमात्मादेव सर्वदा सब जनों के हृदय में अन्तर्यामी होकर रहते हैं ॥१७॥ और भगवद्गीता में भी लिखा है कि—सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः॥ गी० अ० १५ श्लो० १५॥ मैं सबके हृदय में प्रविष्ट हूँ ॥१५॥ अब अर्चावतार को देखिये ऋग्वेद में लिखा है कि—अदो यद्दारुप्लवते सिन्धोः पारे अपुरुषं तदारभस्व दुर्हणोतेन-गच्छपरस्तरम्॥ विप्रकृष्ट देश में जो यह समुद्र के तट पर

काठ की मूर्ति है सो किसी जीव की नहीं है बल्कि परमात्मा की है अतएव दुर्हण है उस मूर्ति की उपासना करो और उससे मोक्ष प्राप्त करो ॥ और भी लिखा है कि—अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत। अर्चन्तु पुत्रका उत्पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ऋग्० अष्ट० ६ अ० ५ सू० ५८ मं० ८ ॥ हे अध्वर्यादि तुम परमात्मा का पूजन करो विशेष रूप से पूजा करो। हे प्रियमेध सम्बन्धी या प्रियमेधा के गोत्रवाले तुम पूजन करो और पुत्र भी पूजें और जैसे पुरुष धर्षणशील को पूजते हैं ॥८॥ पूर्वोक्त कथन से पर १ व्यूह २ विभव ३ अन्तर्यामि ४ अर्चावतार ५ इन भेदों से परस्वरूप पांच प्रकार का सिद्ध हो गया अब आगे पुरुषार्थ स्वरूप पांच प्रकार का वर्णन करते हैं ॥५॥

मूल—पुरुषेणार्थनीयः पुरुषार्थः स च धर्मार्थकामात्मानुभवभगवदनुभवभेदात् पञ्चविधः ॥६॥

मूल—(पुरुषेण[१]) जीवात्मा करके (अर्थनीयः[२]) चाहना करने योग्य वस्तु को (पुरुषार्थः[३]) पुरुषार्थ कहते हैं (सः[४]) वह पुरुषार्थ (च[५]) भी (धर्मार्थकामात्मानुभवभगवदनुभव-भेदात्[६]) धर्म १ अर्थ २ काम ३ जीवात्मा का अनुभव ४ भगवान का अनुभव ५ इन भेदों से (पञ्चविधः[७]) पांच प्रकार का है। धर्म का लक्षण जैमिनि महर्षि कहे हैं कि—चोदना-

Scanned with OKEN Scanner

लक्षणोऽर्थोधर्मः ॥ पूर्वमीमां० अ० १ पा० १ सू० २ ॥ प्रेरणात्मक लक्षण अर्थ को धर्म कहते हैं ॥२॥ और कणाद महर्षि यह कहे हैं कि—यतोऽभ्युदयनिश्श्रेयससिद्धिस्सः (धर्मः) ॥ वैशि० अ० १ आह्नि० १ सू० २ ॥ जिससे इस लोक में अभ्युदय होते हुए परलोक में निःश्रेयससिद्धि होवे उसको धर्म कहते हैं ॥२॥

और मनुस्मृति में लिखा है कि—धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ मनु० अ० ६ श्लो० ९२ ॥ धीरता १ क्षमा २ मन को विषयों से रोकना ३ अन्याय से पराये धन को न लेना ४ मिट्टी तथा जल से देह को शुद्ध करना ५ विषयों से चक्षु आदिक को रोकना ६ शास्त्र आदि के तत्त्व का ज्ञान ७ आत्मज्ञान ८ यथार्थ कहना ९ और क्रोध न करना १० यह दश प्रकार के धर्म का स्वरूप है ॥९२॥ और मनु स्मृति में आचार को परम धर्म कहा है ॥

आचारः परमोधर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च। तस्मादस्मिन्सदायुक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः ॥ मनु० अ० १ श्लो० १०८ ॥ श्रुति तथा स्मृति में कहा हुआ आचार परम धर्म है जिससे आत्मवान् अपने धर्म को चाहनेवाला ब्राह्मण सदा आचारयुक्त रहे ॥१०८॥ भगवान् शब्द का यह अर्थ है कि—उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामगतिंगतिं वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो-भगवानिति ॥ जो सम्पूर्ण जीवों की उत्पत्ति तथा प्रलय को और अगति तथा गति को और विद्या तथा अविद्या को जानता है उसको भगवान् कहते हैं। धर्म १ अर्थ २ काम ३ जीवा-

त्मानुभव ४ भगवदनुभव ५ इन पांच प्रकार के पुरुषार्थ कहे अब उपायस्वरूप पांच प्रकार का वर्णन करते हैं ॥६॥

मूल—उपायश्च[1] कर्मज्ञानभक्तिप्रपत्त्याचार्याभिमानभेदात्[2][3] पञ्चविधः[4] ॥७॥

टीका—(उपायः[1]) इस संसार से छूट जाने का उपाय स्वरूप (च[2]) भी (कर्मज्ञानभक्तिप्रपत्त्याचार्याभिमानभेदात्[3]) दानयज्ञादिकों के करना रूप कर्म १ ज्ञान २ नवधाभक्ति ३ श्रीमन्नारायण को ही अपना रक्षक मानकर सबका भरोसा छोड़ देना रूपप्रपत्ति ४ और श्रीमन्नारायण की शरणागत के उपदेश देनेवाले आचार्य ही मेरा उद्धार करेंगे ऐसा विश्वास करना रूपआचार्याभिमान ५ इन भेदों से (पञ्चविधः[4]) पांच प्रकार का है। कर्म करने की आज्ञा यजुर्वेद भी दिया है कि—कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतंसमाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ यजु० अ० ४० मं० २॥ इस लोक में समस्त वैदिक कर्मों को करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा करे मनुष्य के विषय में ऐसा ही है इससे अन्य नहीं है कर्म करने से मनुष्य उसमें लिप्त नहीं समझा जाता है॥२॥ और भगवद्गीता में भी लिखा है कि—तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर॥ गी० अ० ३ श्लो० १६॥ जिससे कर्म में सक्त न भए हुए करने योग्य स्ववर्णाश्रमोचित कर्म को निरन्तर

तुम करो ॥१९॥ कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिताजनकादयः ॥२०॥ जनकादिक निश्चय करके कर्म करके ही मोक्ष को प्राप्त किये हैं ॥२०॥ कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥ गी० अ० ४ श्लो० १५ ॥ जिसमें तुम मनु इत्यादि पूर्व मुमुक्षु न करके पूर्व काल में किए हुए कर्म को ही करो ॥१५॥ और कर्म का लक्षण श्रीकृष्ण भगवान् कहे हैं कि—"भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्म-संज्ञितः ॥ गी० अ० ८ श्लो० ३ ॥ जो सर्वभूत प्राणियों की उत्पत्ति करनेवाला विसर्ग है उसको कर्म कहते हैं ॥३॥ और भी लिखा है कि—स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ॥ गी० अ० १८ श्लो० ४५ ॥ स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥४६॥ अपने अपने कर्म में तत्पर होता हुआ मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है ॥४५॥ अपने वर्णाश्रमोचित कर्म करके उस श्रीमन्नारायणदेव की पूजा करके मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है ॥४६॥ इन प्रमाणों से कर्म उपायस्वरूप सिद्ध हो गया। अब ज्ञान को उपायस्वरूप साबित करते हैं कि—तमेव विदित्वातिमृत्युमेति ॥ यजु० अ० ३१ मं० १८ ॥ उसको जान कर मोक्ष को प्राप्त करता है ॥१८॥ तरति शोकमात्मवित् ॥ छान्दोग्योप० अ० ७ खं० १ मं० ३ ॥ आत्मवेत्ता पुरुष शोक को तर जाता है ॥३॥ एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थि-विकरतीह सोम्य ॥ मुण्ड० २ खं० १ मं० १० ॥ हे सोम्य यहां पर गुहा में स्थित इसको जो जान लेता है वह अविद्या की ग्रन्थि को दूर कर देता है अर्थात् मोक्ष को पाता है ॥१०॥

और भी लिखा है कि—ज्ञानान्मुक्तिः ॥ सां० अ० ३ सू० २३ ॥ ज्ञान से मुक्ति होती है ॥२३॥ ज्ञान किसको कहते हैं यह भगवान् श्रीकृष्णजी कहे हैं कि—अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्। आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ गी० अ० १३ श्लो० ७ ॥ इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च। जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥८॥ असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु। नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥९॥ मयिचानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी। विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥१०॥ अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्। एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥११॥

अपनी प्रशंसा न करना या उत्कृष्ट जनों में अवधारणा न करना[1] अपना धर्म किसी से न जनाना[2] मन वाणी देह से किसी जीव को दुःख न देना[3] दूसरे से दुःख पाने पर भी उसके उपर विकारयुक्त चित्त न करना[4] कोमलता[5] आत्मज्ञान देनेवाले आचार्य की शुश्रूषा आदि से सदा सेवन करना[6] देह के मल को मिट्टी और जल से धोना तथा भीतर के मल को ध्यान आदि से दूर करना[7] वेदान्त के अर्थ में निश्चल रहना[8] आत्मस्वरूप से अन्य विषयों से मन को रोकना[9] ॥७॥ आत्मव्यतिरिक्त विषयों में प्रीति न करना[10] अहङ्कार न करना[11] और जन्म-मरण वृद्धावस्था ज्वर आदि व्याधि दुःख ये सब दोष जब तक यह शरीर रहेगा तब तक रहेंगे इसको सदा विचार करना[12] ॥८॥ आत्मव्यतिरिक्त विषयों

में सक्ति न करना[१३] पुत्र, स्त्री, घर, धन आदिक में अति आसक्ति न करना[१४] और सर्वदा इष्ट और अनिष्ट प्राप्त होने पर हर्ष तथा उद्वेग से रहित चित्त को रखना[१५] ॥९॥ और सर्वेश्वर जो मैं हूँ इस हमारे में एकान्तिक योग करके निश्चला भक्ति करना[१६] जन से रहित एकान्त देश में निवास करना[१७] विषयी जनों की सभा में प्रीति न करना[१८] ॥१०॥ आत्मज्ञान का सदा अनुभव करना[१९] तत्त्वज्ञान के अर्थ को देखना[२०]; ये जो २० प्रकार के कहे हैं इसीको ज्ञान कहते हैं इससे अन्य समस्त अज्ञान हैं ॥११॥ इसी प्रकार से भक्ति भी उपाय स्वरूप है क्योंकि लिखा है कि—भक्तियोगान्मुक्तिः। चतुर्मुखादीनां सर्वेषामपि विना विष्णुभक्त्या कल्पकोटिभिर्मोक्षो न विद्यते। तस्मात्त्वमपि सर्वोपायान्परित्यज्य भक्तिमाश्रय। भक्तिनिष्ठो भव। भक्त्या सर्वसिद्धयः सिध्यन्ति। भक्त्याऽसाध्यं न किंचिदस्ति ॥ त्रिपाद्विभूतिमहानारा० उ० अ० ८ ॥ भक्तियोग से मुक्ति होती है। चतुर्मुख आदिक समस्त देवों के भी मुक्ति विना विष्णु भगवान् की भक्ति के करोड़ों कल्प करके नहीं प्राप्त होती है। इससे तुम भी सम्पूर्ण उपायों को छोड़कर भक्ति का आश्रय करो। भक्तिनिष्ठ हो जाओ भक्ति से समस्त सिद्धियां प्राप्त होती हैं। भक्ति करके असाध्य कोई भी पदार्थ नहीं है ॥८॥ और भी लिखा है कि—भक्त्या त्वनन्यया शक्योऽहमेवंविधोऽर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ गी० अ० ११ श्लो० ५४ ॥ ऐ शत्रुओं को पीड़ित

करनेवाले अर्जुन इस प्रकार के मैं अनन्य भक्ति करके निश्चय जानने को तथा देखने को और प्रवेश होने को भी शक्य हूँ ॥५४॥ वह भक्ति नव प्रकार की श्रीमद्भागवत में लिखी हुई है॥ श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ श्रीमद्भाग० स्कं० ७ अ० ५ श्लो० २३ ॥

विष्णु भववान् की कथा को सुनना १ तथा विष्णु के नामों को कहना २ और विष्णु को स्मरण करना ३ तथा पादतीर्थ का सेवन करना ४ विष्णु की प्रतिमा को पूजना ५ और विष्णु की स्तुति तथा अभिवादन करना ६ तथा विष्णु की सेवकता ७ और विष्णु की मित्रता ८ तथा श्रीविष्णु में आत्मसर्वस्व का निवेदन करना ९ यही नवधा भक्ति है ॥२३॥ पद्मपुराण में तो सोलह प्रकार की भक्ति लिखी हुई है ॥ आद्यं तु वैष्णवं प्रोक्तं-शंखचक्राङ्कनंहरेः । धारणं चोर्ध्वपुण्ड्राणां तन्मंत्राणां परिग्रहः ॥

कीर्तनं श्रवणञ्चैव वन्दनं पादसेवनम् । तत्पादोदकसेवा च तन्निवेदितभोजनम् ॥ तदीयानां च सेवा च द्वादशीव्रतनिष्ठितम् । तुलसीरोपणं विष्णोर्देवदेवस्यशार्ङ्गिणः । भक्तिः षोडशधा प्रोक्ता भवबन्धविमुक्तये ॥ श्रीहरि के शंख चक्र से भुजा के मूल को-अङ्कित करना १ द्वादश उर्ध्वपुण्ड्र धारण करना २ भगवत् सम्बन्धी नाम रखना ३ मूल मंत्र द्वय मंत्र चरम मंत्र को ग्रहण करना ४ तथा याग करना ५ भगवन्नाम कीर्तन करना ६ विष्णु की कथा सुनना ७ विष्णु की वन्दना करना ८ विष्णु की मूर्ति का पूजन करना ९ विष्णु का चरणोदक सेवन करना

१० तथा विष्णु का भोग लगाया हुआ भोजन करना ११ भागवतों की सेवा करना १२ द्वादशी व्रत में निष्ठा करना १३ तुलसी लगाना १४ पूजा समय में तुलसी की माला पहिनना १५ और भगवान् की मूर्ति स्थापन करना १६ यह सोलह प्रकार की भक्ति संसार के बन्धन छुड़ाने के लिये कही गई है ॥ अब प्रपत्ति को उपायस्वरूप साबित करते हैं ॥ मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥ श्वेता० अ० ६ मं० १८ ॥ संसार से छूटने की इच्छा करनेवाला मैं श्रीमन्नारायण देव के शरण को प्राप्त करता हूँ अर्थात् प्रपत्ति करता हूँ ॥१८॥ और भी लिखा है कि— नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥ मुण्ड० ३ खं० २ मं० ३ ॥ यह आत्मा व्याख्यान से नहीं प्राप्त होता है न तो मेधा से न बहुत सुनने से जिसको यह स्वीकार कर लेता है वह उसको प्राप्त कर लेता है और उसके लिये अपने शरीर को विशेष रूप से जना देता है ॥३॥ और वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि— सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥ वाल्मी० रा० युद्धकां० स० १८ श्लो० ३३ ॥ एक बार भी मैं आपकी प्रपत्ति करनेवाला प्रपन्न हूँ जो ऐसी याचना करता है उस प्रपन्न जन के लिये सम्पूर्ण जीवों से अभय प्रदान मैं करता हूँ यह मेरा व्रत है ॥३३॥ और भगवद्गीता में भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी कहे हैं कि— मामेकं शरणं व्रज ॥ गी० अ०

Scanned with OKEN Scanner

१८ श्लो० ६६ ॥ केवल एक मुख्य मेरी शरणागत अर्थात् प्रपत्तिं तुम करो ॥६६॥ अब चरमोपायस्वरूप आचार्याभिमान को देखिये लिखा है कि— परमगुरूपदेशेन सहस्रारे जलज्योतिर्वा बुद्धि गुहानिहित ज्योतिर्वा षोडशान्तस्थतुरीयचैतन्यं वान्तर्लक्ष्यं भवति। तद्दर्शनं सदाचार्यमूलम्। आचार्यो वेदसंपन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः। योगज्ञो योगनिष्ठश्च सदा योगात्मकः शुचिः॥ गुरुभक्तिसमायुक्तः पुरुषज्ञो विशेषतः। एवं लक्षणसंपन्नो गुरुरित्यभिधीयते॥ गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः। अन्धकारनिरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते॥ गुरुरेव परंब्रह्म गुरुरेव परा गतिः। गुरुरेव परा विद्या गुरुरेव परायणम्॥ गुरुरेव परा काष्ठा गुरुरेव परं धनम्। यस्मात्तदुपदेष्टासौ तस्माद्गुरुतरो गुरुः॥ अद्वयतारकोपनि०॥ श्रेष्ठ गुरु के उपदेश करके सहस्रार में जलज्योति या बुद्धि गुहा में निहित ज्योति या षोडशान्तस्थ तुरीय चैतन्य अन्तर लक्ष्य होता है। तत्त्वदर्शन आचार्य द्वारा होता है। आचार्य का लक्षण यह है कि आचार्य वेद पढ़ा हो विष्णुभक्त हो मत्सररहित हो योग जाननेवाला हो, योगनिष्ठ हो और सर्वदा योगात्मक तथा पवित्र हो॥ गुरु की भक्ति से अच्छे प्रकार युक्त हो विशेष रूप से पुरुष को जाननेवाला हो इन सब लक्षणों से जो संयुक्त हो उसको गुरु कहते हैं॥ गु कहते हैं अन्धकार को और रु कहते हैं प्रकाश को अर्थात् सदुपदेश द्वारा जो अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करे उसको गुरु कहते

Scanned with OKEN Scanner

हैं ॥ गुरु ही परब्रह्म हैं तथा गुरु ही परागति हैं गुरु ही पराविद्या हैं और गुरु ही श्रेष्ठ अयन हैं ॥ तथा गुरु ही पराकाष्ठा हैं और गुरु ही श्रेष्ठ धन हैं क्योंकि तत्त्वज्ञान को उपदेश देनेवाले वे हैं इससे गुरु सबसे श्रेष्ठ है ॥ और मुण्डकोपनिषद् में लिखा है कि—तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समिद्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥ मुण्ड० १ खं० २ मं० १२ ॥ तत्त्व जानने के लिये समिधा हाथ में लेकर शिष्य वेदपाठी ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जावे ॥१२॥ छान्दोग्योपनिषद् में भी लिखा है कि—श्रुतंह्येवमेवभगवद्दृशेभ्य आचार्याद्ध्येव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयतीति ॥ छान्दो० अ० ४ खं० ९ मं० ३ ॥ निश्चय करके आपके तुल्य ऋषियों से ऐसा मैं सुना हूँ कि आचार्य से जानी हुई विद्या निश्चय मोक्ष प्राप्त कराती है ॥३॥ आचार्यवान् पुरुषो वेद ॥ छा० अ० ६ खं० १४ मं० २ ॥ आचार्यवाला पुरुष तत्त्व को जानता है ॥२॥ और श्वेताश्वतरोपनिषद् में लिखा है कि—यस्य देवे पराभक्तिर्यथादेवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ श्वेताश्व० अ० ६ मं० २३ ॥ श्रीमन्नारायणदेव में जिसकी पराभक्ति है जैसी भक्ति श्रीमन्नारायणदेव में वैसी ही श्रीगुरुदेव में जिसकी हो उसीको निश्चय करके इन कहे हुए तत्त्वों का उपदेश महात्मा लोग देते हैं ॥२३॥ और योगशिखोपनिषद् में लिखा है कि—गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवः सदाच्युतः । न गुरोरधिकः कश्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ योग शि० अ० ५ मं० ५६ ॥

Scanned with OKEN Scanner

दिव्यज्ञानोपदेष्टारं देशिकं परमेश्वरम्। पूजयेत्परया भक्त्या तस्य ज्ञानफलं भवेत् ॥५७॥ यथा गुरुस्तथैवेशो यथैवेशस्तथा-गुरुः। पूजनीयो महाभक्त्या न भेदो विद्यतेऽनयोः ॥५८॥ गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु विष्णु हैं, गुरुदेव सदा अच्युत हैं तीनों लोक में गुरु से अधिक कोई नहीं हैं ॥५६॥ दिव्य ज्ञान के उपदेश देनेवाले परमेश्वर रूप आचार्य की जो पराभक्ति से पूजा करता है उसको ज्ञान का फल प्राप्त होता है ॥५७॥ जैसा गुरु वैसा परमात्मा और जैसा परमात्मा वैसा गुरु अर्थात् गुरु और परमात्मा इन दोनों में भेद नहीं है इससे बडी भक्ति से श्रीगुरुदेवजी की पूजा करनी चाहिये ॥५८॥ और भी लिखा है कि—कर्णधारं गुरुं प्राप्य तद्वाक्यं प्लववद्दृढम्। अभ्यास-वासनाशक्त्या तरन्तिभवसागरम् ॥ योग शि० अध्याय ६ मं० ७६ ॥ कर्णधार गुरु को पाकर और गुरु के वाक्य को दृढ़ जहाज करके अभ्यास के वासना की शक्ति से संसार सागर को जीव पार कर जाते हैं ॥७६॥ और त्रिपाद् विभूति महानारायणोपनिषद् में लिखा है कि—देशिकस्तमेव कथयति। सकलवेदशास्त्रसिद्धान्तरहस्यजन्माभ्यस्तात्यन्तोत्कृष्टसुकृत-परिपाकवशात्सद्भिः सङ्गो जायते। तस्माद्विधिनिषेधविवेको भवति। ततः सदाचार प्रवृत्तिर्जायते। सदाचारादखिलदुरित-क्षयो भवति। तस्मादन्तःकरणमतिविमलं भवति। ततः सद्गुरुकटाक्षमन्तःकरणमाकांक्षति। तस्मात्सद्गुरुकटाक्षलेश-विशेषेण सर्वसिद्धयः सिद्ध्यन्ति। सर्वबन्धाः प्रविनश्यन्ति।

श्रेयो विघ्नाः सर्वे प्रलयं यान्ति । सर्वाणि श्रेयांसि स्वयमेवा-यान्ति । यथा जात्यन्धस्य रूपज्ञानं न विद्यते तथा गुरूपदेशेन विना कल्पकोटिभिस्तत्त्वज्ञानं न विद्यते । तस्मात्सद्‌गुरु कटाक्षलेशविशेषेणाचिरादेव तत्त्वज्ञानं भवति ॥ त्रिपाद्विभूति-महानारा० अ० ५ ॥ आचार्य इसीको कहते हैं कि समस्त वेदशास्त्र के सिद्धान्त के रहस्य से और अनेक जन्म के किये हुए अच्छे अच्छे सुकृत के फल से सज्जनों से सङ्ग होता है।

तथा सज्जनों के सङ्ग से विधि निषेध का विचार होता है। इसके बाद सदाचार के विषय प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। सदाचार से समस्त पाप का क्षय हो जाता है। पाप का क्षय होने से अन्तःकरण अत्यन्त विमल होता है। इसके बाद सद्‌गुरु की कृपाकटाक्ष अन्तः करण चाहता है। जिससे सद्‌गुरु की कृपाकटाक्ष का लेश विशेष से सब सिद्धियां प्राप्त होती हैं और समस्त बन्धन नष्ट हो जाते हैं। कल्याण के विघ्न सब नाश हो जाते हैं। सम्पूर्ण कल्याण अपने ही प्राप्त हो जाते हैं। जैसे जन्मान्ध का रूप ज्ञान नहीं होता है वैसे ही बिना गुरु के उपदेश के करोड़ कल्प में भी तत्व ज्ञान नहीं होता है। जिससे सद्‌गुरु की कृपाकटाक्ष का लेश विशेष से शीघ्र ही तत्व का ज्ञान हो जाता है। और नारद परिव्राजकोपनिषद् में लिखा है कि— सत्संप्रदायस्थं श्रद्धावन्तं सत्कुलभवं श्रोत्रियं शास्त्रवात्सल्यं गुणवन्तमकुटिलं-सद्‌गुरुमासाद्य ॥ नारदप० उपदेश० २ ॥ सत्सम्प्रदाय में

Scanned with OKEN Scanner

स्थित श्रद्धावाले अच्छे कुल में उत्पन्न वेदपाठी शास्त्र वात्सल्य गुणी अकुटिल सद्गुरु को पाकर तत्व ज्ञान प्राप्त करे ॥२॥ और ब्रह्मविद्योपनिषद् में लिखा है कि—तस्य दास्यं सदा कुर्यात्प्रज्ञया परया सह। शुभंवाऽशुभमन्यद्वा यदुक्तं गुरुणा भुवि ॥ ब्रह्मवि० मं० २७॥ तत्कुर्यादविचारेण शिष्यः संतोषसंयुतः ॥२८॥ गुरुभक्तिं सदा कुर्याच्छ्रेयसे भूयसे नरः ॥३०॥ गुरुरेव हरिः साक्षान्नान्य इत्यब्रवीच्छ्रुतिः ॥३१॥ गुरु की सेवकता पराप्रज्ञा के साथ सर्वदा करे पृथिवी में गुरु जो शुभ या अशुभ कुछ कहैं ॥२७॥ संतोष से संयुक्त शिष्य उसको बिना विचारे करे ॥२८॥ मनुष्य अधिक कल्याण के लिए गुरु की भक्ति सर्वदा करै ॥३०॥ गुरु ही साक्षात् नारायण हैं अन्य नहीं हैं ऐसा श्रुति में कहा है ॥३१॥ और भी लिखा है कि—आचार्यो ब्रह्मणोमूर्तिः ॥ मनु० अ० २ श्लो० २२६ ॥ आचार्य परमात्मा की मूर्ति हैं ॥२२६॥ और भी लिखा है कि—आचार्यं मां विजानीयात् नावमन्येत कर्हिचित्। न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयोगुरुः ॥ श्रीमद्भागवत स्कं० ११ अ० १७ श्लो० २७॥ आचार्य को श्रीमन्नारायण समझै कभी भी आचार्य का अपमान न करे और मनुष्य बुद्धि से असूया न करे क्योंकि सर्वदेवमय गुरु हैं ॥२७॥ और त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद् में लिखा है कि— गुरुःसाक्षादादिनारायणः पुरुषः ॥ त्रिपा० अ० ८॥ गुरु साक्षात् आदि नारायण पुरुष हैं ॥८॥ इस कथन से कर्म १ ज्ञान २ भक्ति ३ प्रपत्ति ४ आचार्याभिमान ५ इन भेदों से

उपायस्वरूप पांच प्रकार का वर्णन करते हैं ॥७॥

मूल—विरोधी[1] च[2] स्वस्वरूपविरोधी[3] परस्वरूपविरोधी[4] पुरुषार्थविरोधी[5] उपायविरोधी[6] प्राप्तिविरोधीति[7] भेदात्पञ्चविधः[8] ॥८॥

टीका—(विरोधी[1]) विरोधीस्वरूप (च[2]) भी (स्वस्वरूपविरोधी[3]) स्वस्वरूपविरोधी जो जीव को अपने स्वरूप को नहीं जानने देता है १ (परस्वरूपविरोधी[4]) परस्वरूपविरोधी जो परमात्मा का ज्ञान नहीं होने देता है २ (पुरुषार्थ विरोधी[5]) पुरुषार्थ विरोधी हम सब जिसको चाहते हैं उसको जो हम सबों को नहीं मिलने देता है ३ (उपाय विरोधी[6]) उपाय विरोधी हम सब जो कुछ अपने प्रिय पदार्थों के मिलने का उपाय करते हैं उसको पूरा नहीं होने देता है ४ (प्राप्तिविरोधीतिभेदात्[7]) प्राप्तिविरोधी जो हम सबों के प्रिय पदार्थों को नहीं मिलने देता है इन भेदों से (पञ्चविधः[8]) पांच प्रकार का है। अर्थात् विरोधिस्वरूप स्वस्वरूपविरोधी १ परस्वरूपविरोधी २ पुरुषार्थस्वरूपविरोधी ३ उपायस्वरूपविरोधी ४ और प्राप्तिस्वरूपविरोधी ५ भेद से पांच प्रकार का है ॥८॥

मूल—तत्र[1] नित्याः[2] सदा[3] संसारसंबन्ध-[4]

Scanned with OKEN Scanner

रूपावद्यरहिताः भगवदानुकूल्यैकभोगाः[५] श्रीवैकु-
ण्ठनाथस्य[६] पट्टबन्धनस्य[७]ोचिता[८] मंत्रिणः[९] ईश्वर-[१०]
नियोगात्[११] सृष्टिस्थितिसंहारान्[१२] कर्तुं[१३] शक्ताः[१४] पर-
व्यूहादिसर्वावस्थास्वप्यनुसृत्य[१५][१६] कैङ्कर्यकरणशीला[१७]
विष्वक्सेनप्रभृतयोऽमराः[१८][१९] ॥६॥

टीका—(तत्र[१]) जो नित्य १ मुक्त २ बद्ध ३ केवल ४ मुमुक्षु ५ इन भेदों से पांच प्रकार के जीव होते हैं जिसमें (नित्याः[२]) नित्य जीव को कहते हैं कि जिनको (सदा[३]) हमेशा (संसारसम्बन्धरूपावद्यरहिताः[४]) संसार का सम्बन्ध रूप दुःख भोगना नहीं पड़ा हो अर्थात् कभी भी संसार के दुःख का सम्बन्ध जिसको न हुआ हो तथा (भगवदानुकूल्यैकभोगाः[५]) जिन्होंने भगवान् के अनुकूल रहना ही अपना एक भोग सुख समझा हो और (श्रीवैकुण्ठनाथस्य[६]) श्रीवैकुण्ठनाथ का (पट्टबन्धनस्य[७]) पट्टबन्धन के (उचिताः[८]) योग्य (मंत्रिणः[९]) मंत्री हो और (ईश्वरनियोगात्[१०]) ईश्वर की आज्ञा से (सृष्टि-स्थितिसंहारान्[११]) संसार की उत्पत्तिपालनसंहार (कर्तुं[१२]) करने के लिये (शक्ताः[१३]) समर्थ हो और (परव्यूहादिसर्वाव-स्थासु[१४]) भगवान के परव्यूह आदिक सब अवस्थाओं में

(अपि[१५]) भी (अनुसृत्य[१६]) पीछे से प्राप्त होकर (कैङ्कर्य-करणशीलाः[१७]) अपने स्वामी श्रीमन्नारायण की सेवा करने का स्वभाव है जिनका (विष्वक्सेनप्रभृतयः[१८]) ऐसे ऐसे श्री विष्वक्सेन जी तथा गरुड़ जी और शेषराज जी इत्यादिक (अमराः[१९]) अमर नित्य जीव हैं। अब यहां पर बहुत लोग यह कहते हैं कि विष्वक्सेन का तो नाम भी प्राचीन ग्रन्थों में नहीं है तो कैसे मान लिया जाय कि नित्य जीव विष्वक्सेन प्रभृति हैं। इसका उत्तर यह है कि वे लोग प्राचीन ग्रन्थों का अवलोकन नहीं किये हैं क्योंकि यदि किये रहते तो ऐसा न कहते देखिये विष्वक्सेन संहिता में लिखा है कि—अदादिमं मंत्रराजं लक्ष्म्यै स पुरुषोत्तमः। सापि सेनाधिपतये कृपया परया ददौ॥ वह श्री पुरुषोत्तम भगवान् लक्ष्मीजी के लिये इस मन्त्रराज को दिये और वह लक्ष्मीजी अत्यन्त कृपा करके विष्वक्सेनजी के लिये दिये। और पराशरीय धर्मशास्त्र के उत्तर खण्ड में भी लिखा है कि—अनन्तसत्यधामाख्यं विष्वक्सेनगजाननाः॥ परा० अ० ६ श्लो० ५४॥ इस श्लोक में विष्वक्सेनजी का नाम स्पष्ट आया है। और त्रिपाद्विभूति-महानारायणोपनिषद् में लिखा है कि—भगवदनन्तविभूति-विधिनिषेधपरिपालकं सर्वप्रवृत्तिसर्वहेतुनिमित्तकं निरतिशय-लक्षण महाविष्णुस्वरूपमखिलापवर्गपरिपालकममितविक्रममेयं-विधविष्वक्सेनंध्यात्वा॥ त्रिपाद्विभू० अ० ६॥ भगवान् के अनन्तविभूति के विधिनिषेध का परिपालक तथा समस्त प्रवृत्ति

Scanned with OKEN Scanner

और सब हेतुओं का निमित्त निरतिशय लक्षण महाविष्णु स्वरूप समस्त अपवर्ग का परिपालक अमित विक्रमवाले श्री विष्वक्सेनजी को इस प्रकार ध्यान कर ॥६॥ और श्रीगरुड़जी को भी लिखा है कि—सुपर्णोऽसि गरुत्मान्पृष्ठे पृथिव्याःसीद ॥ यजु० अ० १७ श्लो० ७२ ॥ हे गरुड़ तुम सुन्दर पांखवाला गरुत्मान् हो इससे पृथिवी के पीठ पर आगे बैठो ॥७२॥ और भी लिखा है कि— प्रदक्षिणनमस्कारपूर्वकं प्रणवगरुड-मारुह्य ॥ त्रिपाद्वि० भू० अ० ५ ॥ जीवप्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके प्रणव के समान गरुड़ पर चढ़कर ॥५॥ और भगवद्गीता में भी लिखा है कि— वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ गी० अ० १० श्लो० ३० ॥ पक्षियों में विनतासुत गरुड़ मैं ही हूँ ॥३०॥ और शेषजी को भी लिखा है कि—अनन्तश्चास्मि नागानाम् ॥ गी० अ० १० श्लो० २६ ॥ अनेक शिरवाले नागों में अनन्त नामवाला शेषजी मैं हूँ ॥२६॥ इस प्रकार से श्रीविष्वक्सेनजी गरुड़जी शेषजी को नित्य जीव निरूपण करके अब मुक्त जीव को कहते हैं ॥६॥

मूल—[1] मुक्ता [2] नाम [3] भगवत्प्रसादेन [4] निवृत्त-प्रकृतिसंबन्धप्रयुक्तक्लेशमलाः [5] भगवत्स्वरूप-गुणविभवाननुभूय [6] अनुभवजनित [7] प्रीतेरुकूलत्वात [8]

वाचा[९] यथा[१०] पर्याप्तिः[११] स्तुत्या[१२] तृप्तिं[१३] विना[१४] वैकुण्ठ-[१५]
महानगरे वर्तमानाः[१६] संतोषानन्दप्रयुक्ता[१७] मुनयः[१८]
॥१०॥

टीका—(मुक्ताः[१]) मुक्तजीव (नाम[२]) वे कहाते हैं कि (भगवत्प्रसादेन[३]) भगवान् की कृपा से (निवृत्तप्रकृतिसंबन्धप्रयुक्तक्लेशमलाः[४]) दूर हो गये हैं प्रकृति के सम्बन्ध से पैदा भये हुये अनेक प्रकार के क्लेशमल जिनके, प्रकृति किसको कहते हैं यह लिखा है कि—सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः॥ सां० अ० १ सू० ६१॥ सत्वगुण रजोगुण तमोगुण की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं ॥६१॥ और भी लिखा है कि— मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनन्तु महेश्वरम्॥ श्वेताश्व० अ० ४ मं० १०॥ मायाप्रकृति को और मायी परमात्मा को जाने ॥१०॥ प्रकृति का भेद भी लिखा है कि—भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च। अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥ गी० अ० ७ श्लो० ४॥ पृथिवी १ जल २ अग्नि ३ हवा ४ आकाश ५ मन ६ बुद्धि ७ और अहंकार ८ ये आठ प्रकार के प्रकृति के भेद हैं ॥४॥ क्लेश पांच प्रकार का पातञ्जल योगदर्शन में लिखा है—अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः(पञ्च) क्लेशाः॥ योगद० अ० १ पा० २ सू० ३॥ अविद्या १ अस्मित २ राग ३ द्वेष ४ अभिनिवेश ५ ये पांच प्रकार के क्लेश हैं ॥३॥ इन पांचों

का लक्षण लिखा है कि—अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचि-सुखात्मख्यातिरविद्या ॥ यो० अ० १ पा० २ सू० ५ ॥ दृग्दर्शन-शक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ सू० ६ ॥ सुखानुशयी रागः ॥७॥ दुःखानुशयीद्वेषः ॥८॥ स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभि-निवेशः ॥९॥ अनित्य में नित्य तथा अपवित्र में पवित्र में दुःख में सुख और अनात्म वस्तु में आत्म ख्याति को अविद्या कहते हैं ॥५॥ दृग् और दर्शन शक्ति के एकता के समान को अस्मिता कहते हैं ॥६॥ सुखानुशयी को राग कहते हैं ॥७॥ दुःखानुशयी को द्वेष कहते हैं ॥८॥ विद्वान् का भी अपने रस को वहन करनेवाला जो अत्यन्त आग्रह है उसको अभिनिवेश कहते हैं ॥९॥ ये पांच प्रकार के क्लेश जिनके दूर हो गये हैं और (भगवत्स्वरूपगुणविभवान्[५]) भगवान् के अचिन्त्य दिव्य अद्भुत नित्य निरवद्य निरतिशयौज्ज्वल्य सौन्दर्य सौगन्ध्य सौकुमार्य लावण्य यौवनादि तथा दिव्य आयुध वसन भूषण-स्रग्चन्दनादि से भूषित दिव्य विग्रह तथा अपार कारुण्य सौशील्य वात्सल्य औदार्य सौलभ्य सत्यकाम सत्यसंकल्प आदिक दिव्य गुण और नित्य निरूपम दिव्य विभवों को, (अनुभूय[६]) अनुभवकर (अनुभवजनितप्रीतेः[७]) अनुभव से उत्पन्न प्रीति के (उत्कूलत्वात्[८]) प्रवाह उत्पन्न होने से (वाचा[९]) अपनी वाणी करके (यथा[१०]) यथा (पर्याप्तिः[११]) शक्ति (स्तुत्वा[१२]) श्रीमन्नारायणदेव की स्तुति कर (तृप्ति[१३]) प्रभु की स्तुति करने से कभी तृप्ति को (विना[१४]) न प्राप्त होते हुए

(वैकुण्ठ महानगरे[१५]) श्री वैकुण्ठ महानगर में (वर्त्तमानाः[१६]) निवास करते हैं, और भगवान् के गुण का अनुभव करने से ही (सन्तोषानन्दप्रयुक्ताः[१७]) अच्छी प्रकार से सन्तुष्ट करनेवाला परमानन्द को प्राप्त कर लेते हैं। वे मुक्त हैं। जैसे कि (मुनयः[१८]) तत्वों को मनन करनेवाले मननशील मुनि सब अर्थात् पराशरजी, भूतयोगिजी, सरोयोगीजी, महायोगीजी, इत्यादि। इस प्रकार से मुक्तजीव का निरूपण करके अब बद्ध जीव को कहते हैं ॥१०॥

मूल—[१]बद्धा [२]नाम [३]पाञ्चभौतिकेऽ[४]नित्ये [५]सुखदुःखानुभवपरिकर [६]आत्मविश्लेषे [७]दर्शनस्पर्शनायोग्यो[८]ऽशुद्धास्पदो[९]ऽज्ञानान्यथाज्ञान विपरीतज्ञान [१०]जनका[११]देह [१२]एवात्मेति [१३]शब्दादि [१४]विषयानुभवजनित[१५]स्वदेहपोषणमेव [१६]पुरुषार्थ[१७]इति [१८]शब्दादिविषयलाभौपयिकतया [१९]वर्णाश्रमधर्मान् [२०]दिनाश्यामेध्य[२१]मेवां [२२]कृत्वा [२३]भूतहिंसां [२४]कृत्वा [२५]परदार परद्रव्यापहारं [२६]कृत्वा [२७]संसारवर्धका [२८]भगवद्विमुखाश्चे-[२९]

तनाः ॥११॥

टीका—(बद्धाः[१]) बद्धजीव (नाम[२]) वे कहाते हैं कि (पाञ्चभौतिके[३]) पृथिवी जल तेज वायु आकाश इन पांच भूतों से बना हुआ यह देह (अनित्ये[४]) अनित्य तथा (सुखदुःखानुभवपरिकरे[५]) सुख दुःख के अनुभव का साधन है। सुखदुःख का लक्षण भी लिखा है कि—सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्। एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ मनु० अ० ४ श्लो० १६० ॥ पराधीनता सब दुःख है और स्वाधीनता सब सुख है संक्षेप से सुखदुःख का यही लक्षण जानना ॥१६०॥ (आत्मविश्लेषे[६]) जब इसमें से जीवात्मा निकल जाता है (दर्शनस्पर्शनायोग्यः[७]) तब यह देखने और छूने के योग्य नहीं रहता है (अशुद्धास्पदः[८]) अशुद्धि का स्थान हो जाता है (अज्ञानान्यथाज्ञानविपरीतज्ञानजनकः[९]) और अज्ञान अन्यथा ज्ञान विपरीत ज्ञान को पैदा करता है (देहः[१०]) शरीर (एव[११]) ही (आत्मा[१२]) आत्मा है (इति[१३]) ऐसा मानते हैं और (शब्दादिविषयानुभवजनितस्वदेहपोषणम्[१४]) शब्दादिक विषयों के अनुभव जनित अपने शरीर का पोषण करना, भगवद्गीता में शरीर को क्षेत्र लिखा है—इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥ गी० अ० १३ श्लो० १ ॥ हे कुन्तीपुत्र यह शरीर क्षेत्र ऐसा कहा जाता है ॥१३॥ महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च। इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥ गी० अ० १३ श्लो० ५ ॥ इच्छाद्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतनाधृतिः।

एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥६॥ पृथिवी १ जल २ तेज ३ वायु ४ आकाश ५ अहङ्कार ६ बुद्धि ७ और सूक्ष्मरूप प्रकृति ८ ये क्षेत्र के उत्पत्ति कारक हैं। और आँख १ नाक २ जीभ ३ कान ४ त्वचा ५ ये पांच ज्ञानेन्द्रियां और वाणी १ हाथ २ पैर ३ गुदा ४ लिङ्ग ५ ये पांच कर्मइन्द्रियों और एक मन तथा शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ये पांच इन्द्रियों के विषय ये सोलह विकार हैं ॥५॥ और इच्छा द्वेष सुखदुःख संघात चेतन ज्ञानशक्ति धीरज इन सबों को विकार के साथ यह देह संक्षेप से कहा गया है ॥६॥ ऐसे देह का पालन करना (एव[१५]) ही (पुरुषार्थः[१६]) पुरुषार्थ (इति[१७]) ऐसा जिन्होंने समझ रखा है और (शब्दादि विषयलाभौपयिकतया[१८]) शब्द आदिक विषयों के लाभ होने के वास्ते, जिन शब्दादिकों के विषय में लिखा है कि— कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च। एकःप्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥ एक शब्द के विषय हरिण मारा जाता है तथा स्पर्श के विषय हाथी मारा जाता है और एक रूप के विषय पिल्लु मारा जाता है तथा गन्ध के विषय भवँरा मारा जाता है और रस के विषय मत्स्य मारा जाता है एक ही विषय प्रमत्त करनेवाला है तो जो बद्धजीव पांचों इन्द्रियों से पांचों विषयों को सेवन करते हैं वे क्यों नहीं मारे जायेंगे। ऐसे तुच्छ विषयों के लिए (वर्णाश्रम धर्मान्[१९]) अपने वर्ण और आश्रम के धर्मों को, वर्ण और आश्रम चार हैं यह लिखा है कि—चातुर्वर्ण्यं त्रयोलोका-

श्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ॥ मनु० अ० १२ श्लो० ६७ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये चार वर्ण स्वर्ग पाताल मृत्युलोक ये तीन लोक और ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, संन्यासाश्रम ये चारो आश्रम वेद पुरुष से पृथक् पृथक् प्रसिद्ध हुए हैं ॥६७॥ चारों वर्णों का धर्म लिखा है कि—अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ मनु० अ० १ श्लो० ८८ ॥ पढ़ाना-पढ़ना, यजन करना, यजन करना, दान देना और दान लेना ये छः कर्म ब्रह्मा ने ब्राह्मणों के लिये बनाया ॥८८॥ और भी लिखा है कि—शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमस्तिक्यं ब्रह्म कर्म स्वभावजम् ॥ गी० अ० १८ श्लो० ४२ ॥ बाह्येन्द्रियों का संयम १ अन्तःकरण का संयम २ शास्त्रोक्त ब्रतादिक ३ बाह्य और अभ्यन्तर की पवित्रता ४ क्षमा ५ सरलता ६ ज्ञान ७ विज्ञान ८ आस्तिकता ९ ये ब्राह्मण के कर्म स्वभाव ही से हैं ॥४२॥ प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। विषयेष्व प्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ मनु० अ० १ श्लो० ८९ ॥ प्रजा की रक्षा करना १ दान देना २ यज्ञ करना ३ पढ़ना ४ और नाच, गान, बाजा, स्त्री आदिक विषयों में आसक्ति न करना ५ ये पांच कर्म संक्षेप से क्षत्रियों के हैं ॥८९॥ और भी लिखा है कि—शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्। दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ गी० अध्याय १८ श्लो० ४३ ॥ शूरपना १ तेज २ धीरज ३ चतुराई ४ और युद्ध

में नहीं भागना ५ दान ६ तथा प्रजा को स्वाधीन रखना ७ ये क्षत्रिय के कर्म स्वभाव ही से हैं ॥४३॥ पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥ मनु० अ० १ श्लो० ९० ॥ पशु की रक्षा करना १ दान देना २ यज्ञ करना ३ पढ़ना ४ और व्यापार करना ५ सूद से धन बढ़ाना ६ तथा खेती करना ७ ये वैश्य के कर्म हैं ॥९०॥ और भी लिखा है कि— कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ॥ गीता अध्याय १८ श्लो० ४४ ॥ खेती करना १ गौ पालना २ व्यापार करना ३ ये वैश्य के कर्म स्वभाव ही से हैं ॥४४॥ एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्। एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ मनु० अ० १ श्लो० ९१ ॥ ब्रह्मा ने शूद्र का एक ही मुख्य कर्म कहा है कि असूया रहित ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णों की सेवा करना ॥९१॥ और भी लिखा है कि–परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापिस्वभावजम् ॥ गी० अ० १८ श्लो० ४४ ॥ तीनों वर्णों की सेवा करना शूद्र का कर्म स्वभाव ही से है ॥४४॥ और आश्रम धर्म पराशरीय धर्मशास्त्र के उत्तर खण्ड में लिखा है कि—मौंज्याद्यजिनदण्डांस्तु ब्रह्मचारी धरेत्सदा ॥परा० अ० ५ श्लो० १०॥ ब्राह्मण ब्रह्मचारी मुञ्ज के तिगुनी हुई सुन्दर मेखला तथा कृष्ण मृग चर्म एक कपास का बना हुआ जनेऊ खड़ाऊँ और केशान्त बेल या पलाश का अङ्गुलि इतना मोटा दण्ड को तथा कमण्डलु को सदा धारण करै। और क्षत्रिय ब्रह्मचारी मौर्वी

धनुष का गुण के समान वाली मेखला रुरुमृग के चर्म तथा एक सन का बना हुआ जनेऊ और ललाट पर्यन्त बर या खैर का अङ्गुलि इतना मोटा दण्ड और कमण्डलु को सदा धारण करै। और वैश्य ब्रह्मचारी सन का सूत के तिगुनी हुई सुन्दर चिक्कन मेखला तथा बकरा के चर्म और भेड़ के बार का बना हुआ एक जनेऊ तथा नासिकान्त गुलर या पाकड़ का छिलका सहित अङ्गुलि इतना मोटा दण्ड को और कमण्डलु को सदा धारण करै ॥१०॥ कटिसूत्रं च कौपीनं शुक्लवस्त्रद्वयं शुभम्। वलयांगुलिकादीनां गृहस्थानां विधार्य्यते ॥ परा० अ० ५ श्लो० ११ ॥ कटि सूत्र कौपीन और सफा सुन्दर धोती चादर दो तथा जनेऊ दो और सोना का बेरा अङ्गुठी कुण्डल आदिक गृहस्थ सर्वदा धारण करै ॥११॥ श्मश्रु लोमजटा चैव यथा वल्कलधारिणाम्। चीराजिनतपोरण्यं वनस्थस्य विधीयते ॥१२॥ दाढ़ीमूछ लोम तथा जटा और पेड़ का छिलका चीराजिन दो जनेऊ तपस्या और बन को बाणप्रस्थी सर्वदा धारण करै॥१२॥ त्रिदण्डमुपवीतं च शिखाकाषायमम्बरम्। कमण्डलुश्च भिन्नं हि यतीनां तु विधीयते ॥ परा० अ० ५ श्लो० १३ ॥ पृथिवी में स्वयं उत्पन्न सुन्दर अङ्गुलि इतना मोटा केशान्त तीन बांस का दण्ड और सफेद एकठो जनेऊ शिखा काषायवस्त्र और तितलौकी के या काठ के या बांस के या मिट्टी के कमण्डलु तथा अकेलपना ये सब सन्यासियों के लिये कहे गये हैं अर्थात् इन सबों को सन्यासी सर्वदा ग्रहण करै॥१३॥ सायं प्रातः

समिद्धोमं स्वाध्यायाध्ययनं जपः। उपस्थितं गृहे भैक्ष्यं विधिस्तु ब्रह्मचारिणः ॥ परा० अ० ५ श्लो० १८ ॥ सांझ सुबह अग्नि में हवन करना १ वेद पढ़ना २ जप करना ३ उपस्थित घर में भीक्षा करना ४ ये ब्रह्मचारियों के लिये विधान हैं ॥१८॥ सायं प्रातश्च जुहुयादग्निहोत्रं सदा गृही। तथैव पंचयज्ञादि यज्ञहोमं समाचरेत् ॥१६॥ गृहस्थ रोज रोज सांझ सुबह अग्निहोत्र करै तथा इसी प्रकार से पञ्चमहायज्ञ आदि तथा अन्य यज्ञ होम सर्वदा करै ॥२०॥ स्नानं त्रिसन्ध्यामपि हि यतीनां तु विधीयते। जपं मौनं तथा योगं ब्रह्मचर्य्यं हुतिस्तथा ॥ परा० अ० श्लो० २० ॥ कामक्रोधौ तथा लोभमोहमानमदांस्त्यजेत्। मत्सर-द्वेष रोषोक्ति निद्रालस्यादि वर्जयेत् ॥२१॥ प्रातःकाल मध्याह्नकाल सायंकाल इन तीनों कालों में स्नान और सन्ध्या-वन्दन करना संन्यासियों के लिये विधान है तथा जप मौन योग ब्रह्मचर्य और दान ये भी विधान हैं ॥२०॥ काम क्रोध लोभ मोह मान मद मत्सर द्वेष रोषोक्ति निद्रा आलस्य आदिक को परित्याग कर दे ॥२१॥ धर्म के विषय में ग्रन्थ के विस्तार के भय से अधिक मैं नहीं लिखता हूँ जिसको अधिक जानना हो वह मेरा बनाया हुआ "यतीन्द्र धर्ममार्तण्ड" नाम के ग्रन्थ को देख ले। इन पूर्वोक्त वर्णाश्रम धर्मों को (विनाश्य[२०]) विनाश करके (असेव्य सेवाम्[२१]) जो ईसाई मुसलमान आदिक कभी भी सेवा करने योग्य नहीं हैं उनकी सेवा को (कृत्वा[२२]) करके (भूतहिंसाम्[२३]) अनेक प्राणियों की हिंसा को, हिंसा

किसको कहते हैं यह लिखा है कि–तत्र हिंसा नाम मनोवाक्काय-कर्मभिः सर्वभूतेषु सर्वदा क्लेशजननम् ॥ शाण्डिल्योप० अ० १ मं० १ ॥ सर्वदा मन वाणी और शरीर के कर्म से सब जीवों को दुःख देना इसको हिंसा कहते हैं ॥१॥ जिसको (कृत्वा[२४]) करके (परदार परद्रव्यापहारम्[२५]) पराई स्त्री तथा पराये धन के अपहार को (कृत्वा[२६]) करके, वे लोग (संसार वर्द्धकाः[२७]) अपने आप ही जन्ममरण रूप संसार को बढ़ानेवाले (भगवद्विमुखाः[२८]) श्रीमन्नारायण भगवान् से विमुख (चेतनाः[२९]) बद्धजीव हैं। जैसे कि आजकल विषयी हैं ॥११॥

मूल—[१]केवलो [२]नाम [३]एकाकी [४]अत्यन्तक्षुत्पिपासाभ्यां [५]पीडितो [६]भक्ष्याभक्ष्यविवेकं कर्तुम-[७]शक्तः [८]स्वदेहं [९]स्वयम[१०]एव [११]भक्षित्वा [१२]प्रसन्नो [१३]भवति [१४]तथा [१५]संसारदावाग्निना [१६]तप्तः [१७]सन् [१८]संसारदुःख-निवृत्त्यर्थं [१९]शास्त्रजन्यज्ञानेन [२०]प्रकृत्यात्मविवेकं [२१]कृत्वा [२२]प्रकृतेः[२३]दुःखाश्रयत्वं [२४]हेयपदार्थसमूहत्वं [२५]रूपाकार-[२६]मात्मनः [२७]प्रकृतेः [२८]परत्वं [२९]स्वयं [३०]प्रकारात्वं [३१]स्वतः

[32]सुखित्वनित्यत्वाप्राकृतत्व[33]स्वरूपमाकारं [34]चानु-
[35]सन्ध्याय [36]पूर्वं [37]स्वेना[38]नुभूतदुःखाधिक्ये[39]नैतदल्परस
[40]आसक्तो [41]ज्ञानानन्दमयपरमात्मविवेकं [42]कर्तुम[43]शक्त
[44]एतदात्मप्राप्तिसाधनभूतज्ञानयोगनिष्ठो [45]योग-
[46]फलमात्मानुभवमात्र[47]मेव [48]पुरुषार्थत्वे[49]नानुभूय
[50]पश्चात्[51]संसारसम्बन्धभगवत्प्राप्तिरहितः याव[52]दात्म-
भा[53]व्य[54]शरीरी [55]सञ्चरन् [56]कश्चित् ॥१२॥

टीका—(केवलः[1]) केवल जीव (नाम[2]) किसको कहते हैं कि (एकाकी[3]) जैसे कि कोई अकेला रहनेवाला (अत्यन्त-क्षुत्पिपासाभ्याम्[4]) बहुत भूख और प्यास से (पीडितः[5]) पीडित होकर (भक्ष्याभक्ष्यविवेकं कर्तुम्[6]) भक्ष्य तथा अभक्ष्य के विचार करने के लिये (अशक्तः[7]) असमर्थ होकर (स्वदेहम्[8]) अपने देह को (स्वयम्[9]) आप ही (एव[10]) निश्चय करके (भक्षित्वा[11]) खाकर (प्रसन्नः[12]) प्रसन्न (भवति[13]) होता है (तथा[14]) वैसे ही (संसारदावाग्निना[15]) संसाररूप दावानल से (तप्तः[16]) अत्यन्त संतप्त (सन्[17]) भया हुआ जीव (संसारदुःखनिवृत्त्यर्थम्[18]) संसार के दुःख

की निवृत्ति के लिये (शास्त्रजन्य ज्ञानेन[१९]) शास्त्र से उत्पन्न हुए ज्ञान से (प्रकृत्यात्मविवेकम्[२०]) प्रकृति और आत्मा के विवेक को (कृत्वा[२१]) करके (प्रकृतेः[२२]) प्रकृति के (दुःखाश्रयत्वम्[२३]) दुःखों का आश्रय और (हेयपदार्थसमूहत्वम्[२४]) त्याग करने योग्य जितने पदार्थ हैं उन सबों के समूह (रूपाकारम्[२५]) रूप आकार है और (आत्मनः[२६]) आत्मा का (प्रकृतेः[२७]) प्रकृति से (परत्वम्[२८]) परे (स्वयम्[२९]) स्वयं (प्रकाशत्वम्[३०]) प्रकाश (स्वतः[३१]) स्वयं ही (सुखित्वनित्यत्वाप्राकृतत्वस्वरूपम्[३२]) सुखानन्द नित्य और अप्राकृतस्वरूप (आकारम्[३३]) आकार को (च[३४]) और (अनुसन्धाय[३५]) अनुसन्धान करके (पूर्वम्[३६]) पहले (स्वेन[३७]) अपने से (अनुभूतदुःखाधिक्येन[३८]) अपरिमित दुःख का अनुभव करने से (एतदल्परसे[३९]) इस जीवस्वरूप के अनुभव रूप अल्प सुख में (आसक्तः[४०]) आसक्त होकर (ज्ञानानन्दमयपरमात्मविवेकम्[४१]) ज्ञान और आनन्दमय परमात्मा के विवेक, परमात्मा ज्ञान और आनन्दमय हैं यह लिखा है कि— सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ॥ तैत्तिरी० ब्रह्मानन्दव० २ अनु० १ ॥ सत्य ज्ञान और अनन्त ब्रह्म है ॥१॥ आनन्दमयोऽभ्यासात् ॥ वेदा० अ० १ पा० १ सू० १२ ॥ आनन्दमय ब्रह्म है अभ्यास से ॥१२॥ जिस ज्ञान और आनन्दमय परमात्मा का स्वरूप के विवेक (कर्तुम्[४२]) करने के लिये (अशक्तः[४३]) अत्यन्त असमर्थ हो जाता है, और यह जान लेता है कि (एतदात्मप्राप्तिसाधनभूतज्ञानयोगनिष्ठः[४४]) इस

जीवात्मा के प्राप्ति रूप सुख में साधन ज्ञान योग की निष्ठा है अर्थात् मुझको ज्ञान से ही आत्म सुख मिला है और (योग-फलम्[४५]) सांख्य योग का फल (आत्मानुभवमात्रम्[४६]) जीवात्मा का केवल अनुभव करना (एव[४७]) ही है (पुरुषार्थ-त्वेन[४८]) पुरुषार्थ ऐसा (अनुभूय[४९]) अनुभव करके (पश्चात्[५०]) तब पीछे (संसारसम्बन्धभगवत्प्राप्ति रहितः[५१]) संसार के सम्बन्ध से रहित हो जाता है और उसको भगवत्स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती है (यावत्[५२]) और सर्वदा (आत्मभावी[५३]) केवल अपने आत्मा के अनुभव में लगा रहता है और (अशरीरी[५४]) विना शरीर के यह अधिकारी (सञ्चरन्[५५]) रहता हुआ (कश्चित्[५६]) कोई जीव है उसीको केवल कहते हैं ॥ यह सब विषय सांख्य शास्त्र में स्पष्ट लिखा है कि—अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ॥ सां० १ । १ ॥ न दृष्टात्तत्सिद्धिर्निवृत्तेऽप्यनुवृत्तिदर्शनात् ॥२॥ आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक इन तीनों दुःखों के अत्यन्त निवृत्ति को अत्यन्त पुरुषार्थ कहते हैं ॥१॥ वह दुःख निवृत्ति दृष्ट पदार्थों से नहीं हो सकती है क्योंकि निवृत्त होने पर भी फिर दुःख देखा जाता है ॥२॥ इत्यादि सूत्रों में शास्त्र जन्य ज्ञान से दुःख निवृत्ति स्पष्ट साबित किये हैं और— असंगोऽयं पुरुष इति ॥ सां० अ० १ सू० १५ ॥ असङ्ग यह जीवात्मा है ॥१५॥ इस सूत्र से प्रकृति से अलग जीवात्मा साबति होता है और ईश्वरासिद्धेः ॥ सां० अ० १ सू० ६२ ॥ ईश्वर के सिद्ध न होने

से ॥६२॥ इस सूत्र से प्रकृति तथा पुरुष से अलग ईश्वर सांख्य शास्त्र में नहीं सिद्ध होता है और—विवेकान्निश्शेष दुःखनिवृत्तौ कृतकृत्योनेतरान्नेतरात् ॥ सां० अ० ३ सू० ८४ ॥ विवेक से समस्त दुःख निवृत्त होने पर कृतकृत्य होता है अन्य उपायों से नहीं ॥८४॥ प्रकृति पुरुषयोरन्यत्सर्वमनित्यम् ॥ सां० अ० ५ सू० ७२ ॥ प्रकृति पुरुष इन दोनों से अन्य सब अनित्य हैं ॥७२॥ अत्यन्तदुःखनिवृत्त्याकृतकृत्यता ॥ सां० अध्याय ६ सू० ५ ॥ यथा दुःखात्क्लेशः पुरुषस्य न तथा सुखादभिलाषः ॥६॥ अत्यन्त दुःख की निवृत्ति से कृतकृत्य जीवात्मा हो जाता है ॥५॥ जैसे दुःख से पुरुष को क्लेश होता है वैसे सुख से अभिलाषा नहीं होती है ॥६॥ यद्वा तद्वा तदुच्छित्तिः पुरुषार्थस्तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः ॥ सां० अ० ६ सू० ७० ॥ इन पूर्वोक्त सांख्य सूत्रों से यह स्पष्ट साबित होता है केवल जीव तीनों दुःखों से रहित बिना शरीर के भगवत्स्वरूप प्राप्ति रहित केवल अपने आत्मा के अनुभव में लगा रहता है ॥१२॥

मूल—मोक्षेच्छूनां[1] मुमुक्षव[2] इति[3] नाम[4] एते[5] च[6] मुमुक्षव[7] उपासका[8]मुमुक्षवः[9] प्रपन्ना[10]श्च[11]द्विधा[12] ॥१३

टीका—(मोक्षेच्छूनाम्[1]) जो जीव यह चाहते हैं कि हमारा मोक्ष हो जाय उन सब जीवों का (मुमुक्षवः[2]) मुमुक्षु (इति[3]) ऐसा (नाम[4]) नाम है (एते[5]) ये मुमुक्षुजीव (च[6]) भी

(मुमुक्षवः[७]) एक मुमुक्षु (उपासकाः[८]) उपासक होते हैं और दूसरे (मुमुक्षवः[९]) मुमुक्षु (प्रपन्ना[१०]) प्रपन्न (च[११]) भी होते हैं इस प्रकार से उपासक और प्रपन्न इस भेद से मुमुक्षु जीव (द्विधा[१२]) दो प्रकार के होते हैं। और प्रपन्न में भी दो भेद हैं एक तो आर्तप्रपन्न होते हैं और दूसरे दृप्तप्रपन्न होते हैं इन दोनों के लक्षण भी लिखा है कि—श्रीशानुभवप्रत्यूहं देहस्थितिं दुरावहाम्। त्वरया प्राप्तिमीशाननिरवद्यतया पुनः। हेयमिदं शरीरं तु तव कैङ्कर्यरोधिनम्। शीघ्रमेव जहि स्वामिन्प्रार्थनार्तेति कथ्यते॥ श्रीमन्नारायणभगवान् के अनुभव करने में विघ्नरूप तथा दुःख से ढोने योग्य इस देह की स्थिति को जो कि आपके नित्य कैङ्कर्य को रोकनेवाला है ऐसे हेय इस शरीर को शीघ्र ही हे भगवन्! आप दूर कीजिये और हे स्वामिन्! शीघ्र ही निरवद्य आपकी प्राप्ति मुझे होवै ऐसी प्रार्थना को आर्त कहते हैं। ये लक्षण जिसमें हों उसको आर्तप्रपन्न कहते हैं॥ और—कृत्याकृत्यविवेकं च परलोकस्य चिन्तनम्। तत्प्राप्तिसाधनं विष्णोः स्वरूपज्ञानमेव च। उपायभावे संत्यज्य कर्मज्ञानादिकं नरः। कुर्वन्भगवतः प्रीत्यै महाभागवतोत्तमः॥ जो पुरुष कृत्य और अकृत्य के विचार को तथा परलोक के चिन्तन को और परलोक की प्राप्ति के साधनों को तथा विष्णुभगवान् के स्वरूप ज्ञान को और कर्म ज्ञान आदिक को उपाय भाव में परित्याग करके भगवान् की प्रीति के लिए जो करता है वह महाभागवतों में उत्तम अर्थात् दृप्तप्रपन्न है॥ और भी लिखा है कि—त्वमेवो-

पायभूतो मे ह्यन्यत्किंचिन्न विद्यते। इत्थं स्वभारमारोप्य सिद्धोपाये श्रियः पतौ॥ निवृत्त्य निर्भरतया स्वप्रयत्नेषु सर्वतः। यावद्देहमवस्थानं दृप्ता प्रपत्तिरीर्यते॥ हे भगवन्! केवल एक आप ही मेरा उपाय और उपेय दोनों हैं और अन्य कोई भी नहीं है इस प्रकार से अपने भार को सिद्धोपाय श्रीमन्नारायण भगवान् में समर्पण करके अपने समस्त उपायों से रहित हो-कर शरीरपातपर्यन्त निर्भय रहना इसको दृप्तप्रपत्ति कहते हैं॥ ये लक्षण जिसमें हों उसको दृप्तप्रपन्न कहते हैं। पूर्वोक्त प्रकार से स्वस्वरूप के जो नित्य १ मुक्त २ बद्ध ३ केवल ४ मुमुक्षु ५ ये पाँच प्रकार के भेद हैं इन सबों का लक्षण स्वरूप निरूपण हो गया॥१३॥

मूल—ईश्वरविषये[१] परत्वं[२] नाम[३] परमपदेऽवा-[४]क्यानादर[५] इति[६] वर्तमानः[७] आदिज्योतीरूपः[८] परवासुदेवः[९]॥१४॥

टीका—(ईश्वरविषये[१]) परस्वरूप जो पर १ व्यूह २ विभव ३ अन्तर्यामी ४ अर्चावतार ५ ये पाँच प्रकार के कहे हैं जिस ईश्वर के विषय में, ईश्वर का लक्षण यह लिखा है कि—क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः॥ योग० अ० १ पा० १ सू० २४॥ क्लेश तथा कर्म के विपाकों के आशयों से

Scanned with OKEN Scanner

अपरामृष्ट पुरुष विशेष को ईश्वर कहते हैं ॥२४॥ उस ईश्वर के विषय में (परत्वम्[२]) पर ईश्वर (नाम[३]) किसको कहते हैं कि (परमपदे[४]) जो परमपद वैकुण्ठ में (अवाक्यानादरः[५]) अवाक्य तथा अनादर हैं अर्थात् जिनके वैभव को वर्णन करने के लिए वेद के वाक्य भी असमर्थ हैं और जिनसे अधिक आदर करने योग्य भी और कोई नहीं है। (इति[६]) इस प्रकार (वर्तमानः[७]) सदा वर्तमान है और (आदिज्योतीरूपः[८]) आदि ज्योतिस्वरूप है और (परवासुदेवः[९]) परवासुदेव है उसको पर कहते हैं। यह पराशरीय धर्मशास्त्र के उत्तरखण्ड में लिखा है कि—एवं वैकुण्ठनाथोऽसौ राजते परमे पदे। सेव्यमानः सदा नित्यै-र्मुक्तैर्भोगपरायणैः॥ परा० अ० ६ श्लो० ४६॥ इस प्रकार सर्वदा भोग परायण नित्य और मुक्त जीवों से सेव्यमान वैकुण्ठनाथ परमपद वैकुण्ठलोक में विराजमान हैं॥४६॥ और तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है कि—यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह॥ तैत्ति० वल्ली० २ अनु० ४॥ मन के साथ वाणी नहीं प्राप्त करके जहां से निवृत्त हो जाती है॥४॥ उसको परब्रह्म कहते हैं। यहां पर बहुत से लोग यह कहते हैं कि ईश्वर परब्रह्म केवल निराकार है। इसका उत्तर स्पष्ट वेद भगवान् दिये हैं कि साकार ब्रह्म है। चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत। श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥ यजु० अ० ३१ मं० २२॥ नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत। पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकानकल्पयन्॥१३॥ परमात्मा

के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ और नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुआ कान से वायु और प्राण उत्पन्न हुए और मुख से अग्नि उत्पन्न हुआ ॥१२॥ और नाभी से अन्तरिक्ष हुआ शिर से दिवलोक हुआ और पैरों से भूमि तथा कान से दिशा हुए और इसी प्रकार से लोकों को भी परमेश्वर ने बनाया ॥१३॥ इससे साबित हो गया कि परब्रह्म का मन, नेत्र, कान, मुख, नाभी, शिर, पैर आदिक दिव्य इन्द्रियां हैं। और भी लिखा है कि—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः ॥ तैत्ति० ब्रह्मानन्द व० २ अनु० १ ॥ उस अदृश्य ब्रह्म से तथा इस दृश्य ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ ॥१॥ और भी लिखा है कि—उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च तद्यद्यजुषा करोति यदेवास्य निरुक्तं परिमितं रूपं तदस्य तेन संस्करोत्यथ यत्तूष्णीं यदेवास्यानिरुक्तमपरिमितं रूपं तदस्य तेन संस्करोति ॥ शत० का० १४ अ० १ ब्रा० २ अ० १८ ॥ परब्रह्म दो प्रकार का है निरुक्त और अनिरुक्त, परिमित और अपरिमित इस कारण जो यज्ञ उपासनादि कर्म यजुर्वेद से करता है उसके द्वारा परब्रह्म के निरुक्त और परिमित रूप का संस्कार करता है और जो तूष्णीं भाव से अध्यात्म का मननादि करता है उसके द्वारा परब्रह्म के अनिरुक्त और अपरिमित रूप का संस्कार करता है ॥१८॥ इससे साबित हो गया कि साकार परब्रह्म है निरकार केवल मानने पर दोष भी है यह लिखा है कि—

केवलनिराकारस्य गगनस्यैव परमब्रह्मणोऽपि जडत्वमापद्येत ॥

Scanned with OKEN Scanner

त्रिपाद्वि० अ० २ ॥ केवल निराकार परब्रह्म को मानने पर आकाश के समान जड मानना पड़ेगा ॥२॥ इससे साकार ब्रह्म है। और भी यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण परब्रह्म के शरीर बताया है कि—यस्य पृथिवी शरीरम्। यस्यापः शरीरम्। यस्याग्निः शरीरम्। यस्याकाशः शरीरम्॥ यस्य वायुः शरीरम्॥ श० का० १४॥ जिस परब्रह्म का पृथिवी शरीर है। जिसका जल शरीर है। जिसका अग्नि शरीर है। जिसका आकाश शरीर है। और जिस परब्रह्म का वायु शरीर है॥ इन प्रमाणों से साकार परब्रह्म का स्वरूप सिद्ध होता है वही परवासुदेव हैं ॥१४॥

मूल—व्यूहो[1] नाम[2] सृष्टिस्थितिसंहारकर्तारः[3] संकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धाः[4] ॥१५॥

टीका—(व्यूहः[1]) व्यूह ईश्वर (नाम[2]) किसको कहते हैं कि (सृष्टि-स्थिति-संहार-कर्तारः[3]) जो समस्त संसार की उत्पत्ति पालन संहार के करनेवाले हों जो कि (संकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धाः[4]) संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध नाम से विख्यात हों। अर्थात् प्रद्युम्न रूप से संसार की उत्पत्ति करते हैं तथा अनिरुद्ध रूप से पालन करते हैं और संकर्षण रूप से संसार का संहार करते हैं—व्यूहावतार को स्पष्ट वेद भी वर्णन करता है कि—ब्रह्म ज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठंदिवमाततान। भूतानां

ब्रह्मा प्रथमोऽत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥ अथर्व० १६ । २३ । ३० ॥ ब्रह्म श्रीमन्नारायणदेव ने बड़े बल धारण किये हैं ब्रह्म श्रीमन्नारायणदेव ने ही सृष्टि के आरम्भ में प्रद्युम्न रूप से बड़े द्युलोक का विस्तार किया है सब प्राणियों में पहले वह ब्रह्म प्रद्युम्न रूप से प्रगट हुआ है उस ब्रह्म श्रीमन्नारायण से स्पर्धा करने को कौन समर्थ है ॥३०॥ नारायणोपनिषद् में लिखा है कि—अथ नित्यो नारायणः ब्रह्मा नारायणः ॥ नारा० मं० २ ॥ नित्य नारायण हैं और ब्रह्मानारायण हैं ॥२॥ इससे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मा नारायण हैं। और भी लिखा है कि—ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ॥ मुण्ड० १ ख० १ मं० १ ॥ ब्रह्मा श्रीमन्नारायणजी सब देवों के पहले हुए वही प्रद्युम्न रूप से विश्व के बनानेवाले हैं और अनिरुद्ध रूप से संसार के पालन करनेवाले हैं ॥१॥ और पराशरीय धर्मशास्त्र के उत्तरखण्ड में लिखा है कि—जगत्सृष्टिस्थितिलयान्कुर्वाणो गुणभेदतः। ऐश्वर्यवीर्यवान्सर्वे प्रद्युम्नः प्रत्यपद्यत ॥ पराश० अ० ६ श्लो० ६६ ॥ तेजःशक्ती समाविश्य ह्यनिरुद्धोऽप्यपालयत्। ज्ञानवान्बलवाँल्लोकानग्रसत्संकर्षणोऽव्ययः ॥७०॥ तीनों गुणों के भेद से संसार की उत्पत्ति पालन संहार को करते हैं—ऐश्वर्य और वीर्यवाला प्रद्युम्न रूप समस्त संसार को उत्पन्न करता है ॥६६॥ और तेजः शक्तिवाला अनिरुद्ध रूप निश्चय करके पालन करता है और ज्ञानवाला तथा बलवाला विकार रहित संकर्षण रूप संपूर्ण संसार का

संहार करता है ॥७०॥ और भगवद्गीता में भी लिखा है कि—सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ॥ गी० अ० १० श्लो० ३२ ॥ हे अर्जुन सर्ग के आदि मे प्रद्युम्न रूप से उत्पत्ति करने वाला जैसे मध्य में अनिरुद्ध रूप से पालन करनेवाला और अन्त में संकर्षण रूप से संहार करनेवाला मैं ही हूँ ॥३२॥ इससे यह सिद्ध हो गया कि जो संकर्षण १ प्रद्युम्न २ और अनिरुद्ध ३ नामसे विख्यात है उसको व्यूहईश्वर कहते हैं॥१५॥

मूल–विभवो[1] नाम[2] रामकृष्णाद्यवताराः[3] ॥१६॥

टीका—(विभवः[1]) विभव ईश्वर (नाम[2]) किसको कहते हैं कि जो (रामकृष्णाद्यवताराः[3]) श्रीराम श्रीकृष्ण आदिक अवतार हैं। यहाँ पर बहुत से लोग यह कहते हैं अवतार के विषय में कोई प्रमाण नहीं है। परन्तु उनका कथन ठीक नहीं है क्योंकि अवतार के विषय में स्पष्ट ये प्रमाण है कि—प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते। तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥ यजु० अ० ३१ मं० १६ ॥ प्रजापति ईश्वर गर्भ में भीतर आता है अजन्मा होकर भी वह बहुत प्रकार से जन्म लेता है उसके उत्पत्ति स्थान को धीर भक्तजन देखते हैं उसी ईश्वर में ये समस्त ब्रह्माण्ड ठहरे हैं ॥१६॥ और भी लिखा है कि—पूर्वो यो देवेभ्यो जातः ॥ यजु० अ० ३१ मं० २० ॥ जिस ईश्वर ने सब देवों से पहले जन्म लिया ॥२०॥ और भी लिखा है कि—

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृत सद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥ यजु० अ० १० मं० २४ ॥ इस मन्त्र में स्पष्ट ॥ अब्जा ॥ इस पद से जल से उत्पन्न मत्स्य और कच्छप अवतार का तथा ॥ गोजा ॥ इस पद से इन्द्रियों से उत्पन्न वाराह और वामन तथा परशुराम और श्रीराम आदिक अवतार का और "अद्रिजा" इस पद से पाषाण से उत्पन्न श्री बदरीनारायण तथा शालग्राम और वेङ्कटेश, वरदराज, श्रीरंगनाथ आदिक अर्चावतार का वर्णन है ॥२४॥ और भी लिखा है कि—एषो ह देवः प्रदिशोनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भ अन्तः। स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥ यजु० अ० ३२ मं० ४॥ यह ईश्वर देव सब दिशा और विदिशाओं में व्याप्त होकर प्रथम कल्प में गर्भस्थ होकर जन्म लेता है। उस ईश्वर ने जन्म लिया है। वह फिर भी जन्म लेगा सर्वतोमुख होने के कारण वह ईश्वर प्रत्येक मनुष्य के साथ अदृश्य रूप से रहता है ॥४॥ और भी लिखा है कि—वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय विजहीते मृगाय ॥ अथर्व० कां० १२ अनु० १ मं० ४८॥ सूकररूपधारी वराह ने यह पृथिवी उद्धृत की है ॥४८॥ वराह उज्जघान सोऽस्याः पतिः॥ शत० १४।१।२।११॥ श्रीवराहजी इस पृथिवी का उद्धार किये हैं इससे इस पृथिवी के पति हैं॥११॥ उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना॥ तैत्ति० अ० प्र० १ अनु० १ मं० ३०॥

हे भूमि तुमको अनन्तभुजावाले कृष्ण वराह ने उद्धार किया है ॥३०॥ और भी लिखा है कि—इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे स्वाहा ॥यजु०अ०५ मं० १५॥ विष्णु ने इस दृश्यमान ब्रह्माण्ड को नापा और तीन प्रकार के पैर रक्खा, उस पद में समस्त संसार अन्तर्भूत हो गया॥१५॥ यह मंत्र ऋग्यजुः साम इन तीनों वेदों में है ॥ मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते ॥ कठो० अ० २ वल्ली ५ मं० ३ ॥ बीच में बैठे हुए वामन की विश्वेदेव उपासना करते हैं ॥३॥ और भी लिखा है कि—रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय। इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश ॥ ऋ० मं० ६ अ० ४ सू० ४७ मं० १८ ॥ परमेश्वर अपनी माया से अनेक रूपवाला होता है सो इस अपने रूप को सब भक्तों के विख्यात करने के लिए जैसे जैसे रूप की इच्छा हुई तैसे तैसे हुआ निश्चय इस परमेश्वर के रूप सैकड़ों हैं दश मुख्य हैं ॥१८॥ इन पूर्वोक्त प्रमाणों से विभवावतार सिद्ध होने पर जिनके चित्त में वेद का गौरव नहीं है वे लोग यह कहते हैं कि यदि आप युक्ति से हमारी शङ्काओं को दूर कर दीजिये तो हम ईश्वरावतार को मान लेंगे। पहली शङ्का कि (१) ईश्वर को अवतार धारण करने की क्या आवश्यकता है? इस प्रश्न का उत्तर श्रीकृष्ण भगवान् दिये हैं कि—परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥ गी० अ० ४ श्लो० ८ ॥ साधुन के रक्षा के निमित्त तथा

दुष्टन के विनाश के वास्ते और धर्म की स्थापना के लिये हम समय समय पर अवतार लेते हैं ॥८॥ पहिले प्रश्न का उत्तर पाने पर दूसरा प्रश्न होता है कि (२) यदि ईश्वर अवतार धारण करेगा तो कर्मबन्धन के बिना किस प्रकार शरीर ग्रहण कर लेगा ? इस प्रश्न का यह उत्तर है कि—जैसे राजा जेल में बिना अपराध के जाता है उसके वहाँ जाने में कानून तोड़ने का अपराध हेतु नहीं है किन्तु कैदियों के ऊपर जो दया है वही हेतु है इसी प्रकार परमेश्वर दया को हेतु बनाकर अवतार लेता है उसके शरीर धारण का हेतु कर्मबन्धन नहीं है इस प्रकार दूसरे प्रश्न का उत्तर पाने पर तो तीसरा प्रश्न होता है कि (३)जब ईश्वर अजन्मा है तो फिर उसका जन्म कैसा ? इस प्रश्न का यह उत्तर है कि जैसे अजन्मा जीव का जन्म होता है वैसे ही अजन्मा ईश्वर का भी जन्म होता है। इसमें प्रमाण देखिये—अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥ गी० अ० ४ श्लो० ६ ॥ मैं अजन्मा अविनाशी और सब जीवों का मालिक हूँ तौभी अपना स्वभाव जो सौशील्य वात्सल्य शरणागत-रक्षकत्व है इससे बारम्बार अवतार लेता हूँ ॥६॥ इस प्रकार अजन्मा का जन्म साबित होने पर चौथा प्रश्न होता है कि—(४) निराकार ईश्वर साकार किस प्रकार होगा ? इस प्रश्न का यह उत्तर है कि जैसे दो अरणियों में व्याप्त निराकार अग्नि रगड़ने से साकार बनकर हविष्य को जलाता है। और जैसे

दियासलाई में व्याप्त निराकार अग्नि घसने से साकार बनकर दिया जलाता है। और जैसे निराकार बिजली गिर जाने से वृक्ष में आग लगकर साकार अग्नि दिखाई पड़ता है वैसे ही निराकार ईश्वर साकार हो जाता है। इस प्रकार चौथे प्रश्न का उत्तर होने पर पांचवां प्रश्न होता है कि--(५) एक रस ईश्वर का अवतार कैसा ? इस प्रश्न का यह उत्तर है कि--जैसे दूध में एक रस रहनेवाला घृत साकार होकर हलुआ पूरी बना देता है। और ऊख में एक रस रहनेवाला रस साकार होकर शक्कर मिश्री तैयार हो जाती है। और जैसे सांभर झील में एक रस रहनेवाला क्षार नमक बन जाता है वैसे ही एक रस ईश्वर भी अवतार धारण कर लेते हैं। इस प्रकार पांचवें प्रश्न का उत्तर होने पर तो छठवां प्रश्न होता है कि--(६) जब ईश्वर शरीर धारण करके वृन्दावन में आ गये तो वृन्दावन को छोड़कर बाकी जगह तो बिना ईश्वर का हो गया। इस प्रश्न का यह उत्तर है कि—जैसे एक निराकार अग्नि जो समस्त ब्रह्माण्ड में व्यापक है वही सायंकाल बक्सर में साकार बनकर सैकडों दीपों से प्रकाश करने लगा। और वही अग्नि अयोध्या में हजारों रूप धारण करके प्रकाश कर बैठा। प्रयाग में इसने लाखों स्वरूपों से प्रकाश किया और काशी तथा भूतपुरी में करोडों रूपों से अग्नि ने रात्रि का दिन बना दिया। अग्नि के बक्सर आदिक स्थानों में करोडों रूप धारण करने पर भी जैसे संसार में व्यापक अग्नि का अभाव नहीं

होता है वैसे ही ईश्वर अवतार धारण करके जब वृन्दावन में आ गये तब भी व्यापक ईश्वर का संसार में अभाव नहीं होता है। इस प्रकार छठवां प्रश्न का उत्तर होने पर अन्तिम सातवां प्रश्न होता है कि—(१) एक ही समय में ईश्वर के आठ आठ अवतार (इतना अन्धेर) इस सातवें प्रश्न का उत्तर यह है कि जैसे एक व्यापक अग्नि छोटे बड़े सब प्रकार के करोडों रूप धारण किये और एक रूप ने दूसरे रूप का अवरोध नहीं किया वैसे ही ईश्वर भी एक समय में मत्स्य आदिक अनेक रूप धारण करते हैं और एक रूप दूसरे रूप का अवरोध नहीं करता है। बस इन पूर्वोक्त युक्तियों से भी राम-कृष्ण इत्यादि अवतार होना साबित होता है इन्हीं को ईश्वर का विभव अवतार कहते हैं ॥१६॥

मूल—[१] अन्तर्यामित्व[२] मुभयविधं [३] दासस्या[४] न्त-
[५] र्वर्तमान [६] इति [७] मम [८] प्राण [९] इति [१०] चोक्त[११] प्रकारेण
[१२] आत्मनो[१३] ऽन्तः [१४] कमले [१५] प्रविष्ट [१६] इति [१७] कमलावासिनी
[१८] स्वय[१९] मप्या[२०] गत्य [२१] प्रवि [२२] श्येति [२३] अन्तः [२४] प्रविश्य [२५] स्व-
स्मि[२६] न्नादरवद्धकः [२७] सुन्दर [२८] इति [२९] विचारवतां [३०] विचारं

सर्वं[३१] सह[३२] स्थित्वा[३३] जानासीति[३४][३५] चोक्तप्रकारेण[३६][३७] लक्ष्म्या[३८] सहितो[३९] विलक्षणविग्रहयुक्तो[४०] हृदयकमले[४१] सकलप्रवृत्ति-निवृत्ती[४२] सदावलोकयन्[४३][४४] वर्तमानः[४५] ॥१७॥

टीका—(अन्तर्यामित्वम्[१]) ईश्वर के अन्तर्यामी स्वरूप (उभयविधम्[२]) दो प्रकार का है (दासस्य[३]) जो दासों के (अन्तः[४]) हृदय के भीतर (वर्तमानः[५]) वर्तमान रहते हैं (इति[६]) ऐसा और (मम[७]) मेरे (प्राणः[८]) प्राण हैं (इति[९]) ऐसा (च[१०]) और (उक्तप्रकारेण[११]) श्री पूर्वाचार्यों से कथित मधुर श्रीसूक्तियों के प्रकार से (आत्मनः[१२]) जीवात्मा के (अन्तः[१३]) अन्तःकरण (कमले[१४]) कमल में (प्रविष्टः[१५]) प्रवेश कर गये हो (इति[१६]) ऐसा और (कमलवासिनी[१७]) कमलवासिनी लक्ष्मीदेवीजी (स्वयम्[१८]) अपने आप (अपि[१९]) भी (आगत्य[२०]) आकर (प्रविश्य[२१]) प्रवेश करके (इति[२२]) स्थिति किया है और (अन्तः[२३]) हम सबों के भीतर (प्रविश्य[२४]) प्रवेश करके (स्वस्मिन्[२५]) अपने में (आदर-वर्द्धक[२६]) आदर के बढ़ानेवाले (सुन्दर[२७]) हे सुन्दर भगवान! (इति[२८]) ऐसा (विचारवताम्[२९]) विचारवालों के (विचारम्[३०]) विचार (सर्वम्[३१]) सम्पूर्ण (सह[३२]) साथ

(स्थित्वा[३३]) रहकर (जानासि[३४]) आप जानते हैं (इति[३५]) ऐसा (च[३६]) और (उक्तप्रकारेण[३७]) पूर्वाचार्यों से कथित श्रीसूक्तियों के प्रकार से (लक्ष्म्या[३८]) श्रीलक्ष्मीदेवी करके (सहितः[३९]) सहित (विलक्षणविग्रहयुक्तः[४०]) विलक्षण दिव्य-मङ्गलविग्रह से युक्त (हृदमकमले[४१]) हृदय कमल में (सकल-प्रवृत्तिनिवृत्ति[४२]) समस्तप्रवृत्ति-निवृत्तिरूप कर्मों को (सदा[४३]) सर्वदा (अवलोकयन्[४४]) देखते हुए (वर्तमानः[४५]) वर्तमान रहते हैं। इस अन्तर्यामी ईश्वर का वर्णन पराशरीय धर्मशास्त्र के उत्तरखण्ड में भी है कि—तदन्तर्याम्यवस्थाभिर्विष्णोः सर्वगतस्य वै। यो यो हृत्पुण्डरीकस्थे वेश्मनीडे सविग्रहः ॥ परा० अ० ६ श्लो० ६५ ॥ सर्वव्यापक वह विष्णु भगवान् अन्तर्यामी होकर प्राप्त होते हैं वह अन्तर्यामी हृदयकमल में स्थिर जो दिव्य मङ्गल विग्रह है वही है ॥६५॥ और बृहदा-रण्यकोपनिषद् के तीसरे अध्याय के सातवें ब्राह्मण में बृहत् रूप से वर्णन है कि—एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ बृहदा० अ० ३ ब्राह्म० ७ मं० ४ ॥ यह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है ॥४॥

अब यहां पर कुछ लोग यह कहते हैं कि मूल के तीसरे पद में (दासस्य) यह पद आया है और दास शूद्रों की पदवी है ब्राह्मण आदि की नहीं है। इसका यह उत्तर है कि समस्त जीव ब्रह्म का दास है देखिये धर्मशास्त्र में लिखा है कि—योजयेन्नामदासान्तं भगवन्नामपूर्वकम् ॥परा० अ० २ श्लो० ४६॥ भगवान् के नामों को पूर्व में कहकर अन्त में दास को लगाना

चाहिये ॥४६॥ इसीसे महावीरजी कहे हैं कि—दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ वाल्मी० रा० सु० सर्ग० ४३ श्लो० ६ ॥ शुद्ध कर्म करनेवाले कोशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रजी का दास हूँ ॥६॥ और भी लिखा है कि—अहं तु नारायणदास-दासदासस्य दासस्य च दासदासः ॥ पां० गी० श्लो० २० ॥ मैं श्रीमन्नारायण भगवान् के दासों के दास का दास के दास का दास के अन्तिम दास हूँ ॥२०॥ और श्रुति भी कहती है कि—ब्रह्मदासाः ब्रह्मदाशा ब्रह्मेमे कितवाः ॥ ये जीव ब्रह्म के दास हैं ॥ और भी लिखा है कि—दासकितवादित्वमधीयत एके ॥ वेदा० अ० २ पा० ३ सू० ४३ ॥ इस सूत्र से भी साबित होता है कि ब्रह्म का जीव दास है। और पद्मपुराण में लिखा है कि—यः परः पुरुषो विष्णुर्नारायण उदाहृतः। दासभूतमिदं तस्य ब्रह्माद्यं सकलं जगत् ॥ जो परम पुरुष विष्णु नारायण कहे गये हैं उनके ब्रह्मा आदिक समस्त संसार दास हैं। इससे यह सिद्ध हो गया कि जीव ब्रह्म का दास है। जो हृदयकमल में श्रीलक्ष्मीसहित विचित्र दिव्य मङ्गल विग्रहयुक्त रहता है और प्रवृत्ति निवृत्तिरूप कर्मों को सदा देखता रहता है उसीको अन्तर्यामी ईश्वर कहते हैं ॥१७॥

१ २ ३ ४ ५
मूल—अर्चावतारो नाम दासानां यदभि-
६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३
मतं तद्रूपवान् तदभिमतं यन्नामतन्नामवानित्युक्त-

[14]प्रकारेण [15]स्वार्थरूपनामरहितः [16]आश्रिताभिमत-
रूपस्[17]तत्कृत[18]नाम[19]सर्वज्ञो[20]ऽप्यज्ञ [21]इव [22]सर्वशक्ति[23]रप्य-
[24]शक्त [25]इवा[26]प्तसमस्तकामो[27]ऽपि [28]सापेक्ष [29]इव [30]रक्ष-
[31]कोऽपि [32]रक्ष्य [33]इव [34]स्वस्वामिभावं [35]विपरीतं [36]कृत्वा
[37]नेत्रविषयतया [38]सर्वसुलभः [39]आलयेषु [40]गृहेषु [41]च
[42]वर्तमानः ॥१८॥

टीका—(अर्चावतारः[1]) अर्चावतार ईश्वर (नाम[2]) किसको कहते हैं कि (दासानाम्[3]) भगवान के दास जनों के (यत्[4]) जैसे स्वरूप का (अभिमतम्[5]) ध्यान करने का अभिमत होता है (तद्[6]) वैसे (रूपवान्[7]) स्वरूपवाले भगवान् अर्चावतार में हो जाते हैं। यह निरुक्त में लिखा है कि—यद्यद्रूपं कामयते तत्तद्देवता भवति। रूपं रूपं मघवा बोभवीति। इत्यपि निगमो भवति ॥ निरु० अ० १० खंड १७॥ भक्तजन जिस जिस रूप को चाहते हैं श्रीमन्नारायण देवता वही वही रूप हो जाते हैं। धनवान् परमात्मा हरएक रूप फिर फिर होता है यह भी निगम होता है ॥१७॥ और भक्तजनों के (यद्[8]) जिस (नाम[9]) नाम में अभिमत होता है (तद्[10]) वैसे

ही (नामवान्[११]) नामवाले भगवान् अर्चावतार में हो जाते हैं (इति[१२]) इस (उक्तप्रकारेण[१३]) उक्त प्रकार करके (स्वार्थरूप-नामरहितः[१४]) रूप और नाम से अपना प्रयोजन ईश्वर को कुछ नहीं है तौभी (आश्रिताभिमतरूपः[१५]) अपने भक्तों के अभिमत रूप अर्चावतार में धारण करनेवाले और (तत्कृत[१६]) भक्तजनों के रक्खा हुआ (नाम[१७]) नाम ग्रहण करनेवाले अर्चावतार में ईश्वर (सर्वज्ञः[१८]) सर्वज्ञ हैं (अपि[१९]) तौभी (अज्ञः[२०]) अज्ञ के (इव[२१]) समान और (सर्वशक्तिः[२२]) सर्वशक्तिमान् हैं (अपि[२३]) तौभी (अशक्तः[२४]) अशक्त के (इव[२५]) समान और (आप्तसमस्तकामः[२६]) अवाप्तसमस्त काम हैं (अपि[२७]) तौभी (सापेक्षः[२८]) अपेक्षा करनेवाले के (इव[२९]) समान और (रक्षकः[३०]) रक्षक हैं (अपि[३१]) तौभी (रक्ष्यः[३२]) रक्षा करने के योग्यके (इव[३३]) समान मालूम होते हैं (स्वस्वामिभावम्[३४]) अपने स्वामी भाव को (विपरीतम्[३५]) विपरीत (कृत्वा[३६]) करके अर्थात् यद्यपि आप सबके स्वामी हैं परन्तु अर्चावतार में तो अपने भक्तों के अधीन अपने स्वरूप को कर दिये हैं इसीसे आप (नेत्रविषयतया[३७]) सबके नेत्रों के विषय होने से (सर्वसुलभः[३८]) सब जीवों के सुलभ हो गये हैं और किसी किसी भक्तों के प्रेम से आप (आलयेषु[३९]) विचित्र मन्दिरों में और भक्त के प्रेम से आप (गृहेषु[४०]) छोटे छोटे घरों में (च[४१]) भी (वर्तमानः[४२]) वर्तमान हैं। जिसको मूर्ति कहते हैं वही अर्चावतार ईश्वर हैं। अब यहां पर बहुत से हुज्जतबाज लोग

यह कहते हैं कि मूर्तिपूजा जैनियों से चली है। परन्तु यह बात नहीं माननी चाहिये क्योंकि इतिहास देखने से मालूम होता है मूर्तिपूजा अनादिकाल से चली आती है। देखिये सत्ययुग में चक्रवर्ती महाराज अम्बरीष के विषय में लिखा है कि—करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये॥ श्रीमद्भा० स्कं० ६ अ० ४ श्लो० १८॥ मुकुंदलिंगालयदर्शने दृशौ॥१६॥ चक्रवर्ती अम्बरीष महाराजा अपने दोनों हाथों को भगवान् के मन्दिर झाड़ने में और अपने कानों को हरि की कथा सुनने में॥१८॥ और अपने दोनों नेत्रों को भगवान् की मूर्ति और मन्दिर देखने में लगा दिये॥१६॥ इससे सिद्ध हो गया कि सत्ययुग में मूर्तिपूजा होती थी। और त्रेतायुग में सगर दिलीप, दशरथ, प्रभु रामचन्द्र आदि ने अश्वमेधादिक यज्ञ किये हैं और उन यज्ञों में महावीर की मूर्ति का पूजन आवश्यक है जिसको यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा और शतपथ ब्राह्मण कात्यायन सूत्र ने कहा है इससे मानना पड़ेगा कि त्रेतायुग में मूर्तिपूजन होता था। और द्वापरयुग में विदुरजी के विषय में लिखा है कि—

अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः कृतानि नानायतनानि विष्णोः।
प्रत्यंगमुख्याङ्कितमन्दिराणि यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरन्ति॥

श्रीमद्भा० स्कं० ३ अ० १ श्लो० २३।

और तहां अन्य ऋषि तथा देवताओं के बनाये हुए जिनके शिखरों पर के सोने के कलशों पर चक्रों की मूर्तियां

शोभा दे रही हैं ऐसे अनेकों विष्णु भगवान् के मन्दिर विदुरजी ने देखे। जिन मन्दिरों के शिखरों पर विराजमान चक्रों के दर्शन से दूर रहनेवाले पुरुषों को भी बारम्बार श्रीकृष्ण भगवान का स्मरण होता है ॥२३॥ इससे सिद्ध हो गया कि द्वापरयुग में मूर्तिपूजा होती थी। और कलियुग में स्पष्ट शालग्रामक्षेत्र, जगन्नाथ, श्रीरंगनाथ आदिक की पूजा देखी जाती है। इससे यह साबित हो गया कि मूर्तिपूजा जैनियों से नहीं चली है बल्कि सृष्टि के आदि से है। जब अनादिकाल से मूर्तिपूजन सिद्ध हो जाता है तब वे लोग यह कहते हैं कि वेद में मूर्तिपूजन का खण्डन है क्योंकि—

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः॥
यजु० अ० ४० मं० ६॥

जो अनादि प्रकृति की उपासना करते हैं वे दुःखसागर में डूबते हैं और जो लोग पत्थर आदि की पूजा करते हैं वे चिरकाल घोर नरक में गिर करके महाक्लेश भोगते हैं ॥६॥ इसका उत्तर यह है कि जो इस मंत्र में असम्भूति पद है उसका अनादि प्रकृति यह अर्थ करना और सम्भूति पद का पत्थर आदिक करना यह वेद से विरुद्ध है क्योंकि—सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह। विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते॥ यजु० अ० ४० मं० ११॥ सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति का हेतु जो एक ब्रह्म है उसको सम्भूति कहते हैं और

नश्वर शरीर को विनाश कहा है जो योगी इन दोनों को इकट्ठे शरीर में जानता है वह शरीर से मृत्यु के पार उतरकर आत्म-विज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है ॥११॥ इस मन्त्र में ही स्पष्ट जब सम्भूति का अर्थ आत्मा किया है और असम्भूति का अर्थ शरीर किया है तो जो लोग अपने मनमानी असम्भूति का अर्थ अनादि प्रकृति और सम्भूति का अर्थ पत्थर आदिक करते हैं वह कोई भी विचारशील मनुष्य किसी प्रकार मान नहीं सकता है। अब चालीसवां अध्याय यजुर्वेद के नववें मन्त्र का यथार्थ अर्थ यह है कि जो मनुष्य अपने शरीर की उपासना करते हैं कि शरीर से भिन्न दूसरा कोई आत्मा नहीं है इससे ऋण भी लेना पड़े किन्तु शरीर सुख में बाधा न पहुंचे ऐसे ज्ञान को ग्रहण करता है वह पुरुष नरक को जाता है। और जो मनुष्य हम ही ब्रह्म हैं ऐसा मानकर कर्मकाण्ड का लोप कर देता है वह मनुष्य उससे भी अधिक घोर नरक को प्राप्त होता है ॥६॥ बस, अब यहां यह साबित हो गया कि इस मन्त्र के पूर्वार्ध में नास्तिक चार्वाक मत का खण्डन है और उत्तरार्ध में मायावादी लोग जो कर्म त्याग करते हैं उस कर्मत्याग का खण्डन है। इस मन्त्र में मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं है। जब "अन्धंतमः" इस मन्त्र से मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं होता है तब वे लोग यह कहते हैं कि देखिये लिखा है कि—न तस्य प्रतिमा अस्ति ॥ यजु० अ० ३२ मं० ३ ॥ जो सब संसार में व्यापक है उस निराकार परमात्मा का प्रतिमा

परिमाण सादृश्य या मूर्ति नहीं है ॥३॥ इससे मूर्तिपूजा नहीं करनी चाहिये। इस प्रश्न का यह उत्तर है कि इस मन्त्र में प्रतिमा शब्द का मूर्ति अर्थ नहीं है क्योंकि इसी मन्त्र के आगे के सब पद ईश्वर की मूर्ति सिद्ध करते हैं। हम प्रथम समस्त इस मन्त्र को लिखकर इसका अर्थ दिखाते हैं—नतस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। हिरण्यगर्भ इत्येषः मामाहिंसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः ॥ यजु० अ० ३२ मं० ३ ॥ उस परमात्मा की तुल्यता नहीं है जिसका नाम यश महान् है और जो "हिरण्यगर्भः" इस मन्त्र में वर्णित हुआ है तथा जिस परमात्मा का वर्णन "मामाहिंसीत्" यह मन्त्र कर रहा है और जो "यस्मान्न जातः" इस मन्त्र में वर्णन किया गया है ॥३॥ इस मन्त्र के उत्तरार्ध में तीन मन्त्रों के प्रतीक हैं उन तीनों में ईश्वर कैसा कहा गया है कि—हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ यजु० अ० १३ मं० ४ ॥ हिरण्यगर्भ प्रजापति सर्व प्राणिजाति की उत्पत्ति से पहले स्वयं ब्रह्माण्ड शरीरी हुआ और उत्पन्न होनेवाले जगत का स्वामी हुआ वह प्रजापति अन्तरिक्ष द्युलोक और भूमि को धारण किये हुए है उस प्रजापति की हम हविष्य से परिचर्या करते हैं ॥४॥ मामा हिंसज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्य-धर्मा व्यानट्। यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ यजु० अ० १२ मं० १०२ ॥ जो प्रजापति पृथिवी को

उत्पन्न करनेवाला जो सत्य धारण करनेवाला द्युलोक को सृजन कर व्याप्त है और जो आदिपुरुष प्रथम शरीर जगत् का तृप्ति साधक जल को और आह्लादक चन्द्रमा को उत्पन्न किया वह प्रजापति मुझे मत मारे उस प्रजापति के लिए हम हविष्य देते हैं ॥१०२॥ यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते सषोडशी ॥ यजु० अ० ८ मं० ३६ ॥ जिससे दूसरा कोई उत्कृष्ट नहीं उत्पन्न हुआ है जिसने सम्पूर्ण भुवनों में अन्तर्यामीरूप से प्रवेश किया है वह षोडश कलात्मक प्रजापति प्रजारूप से सम्यक् रमण करता हुआ प्रजापालन के निमित्त अग्नि चन्द्र सूर्य रूप तीन ज्योतियों को अपने तेज से उज्जीवित करता है ॥३६॥ इससे सिद्ध हो गया कि वेदों में मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं है। जब वेद के मन्त्रों से मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं सिद्ध होता है तब वे लोग यह कहते हैं कि जिस श्रीमद्भागवत महापुराण को आप लोग मानते हैं उसीके दशम स्कंध उत्तरार्ध के चौरासिवें अध्याय के तेरहवें श्लोक में लिखा है कि "भौम इज्यधीः" अर्थात् पत्थर आदिक मूर्ति में जो पूज्य बुद्धि करता है "स एव गोखरः" वही पशुओं में गदहा है। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि पूर्वोक्त कथन करनेवाले इस श्लोक के अर्थ को नहीं समझे हैं इससे मैं सम्पूर्ण श्लोक दिखा कर अर्थ करता हूँ ॥ यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः। यत्तीर्थबुद्धि सलिले न कर्हिचिज्ज-

नेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥ श्रीमद्भा० स्कं० १० अ० ८४ श्लो० १३ ॥ जो कफ पित्त वात प्रकृतिवाले शरीर में आत्मबुद्धि करता है और स्त्री आदिकों में ये मेरे हैं ऐसी बुद्धि करता है और जो भूमि के विकारों में पूज्य बुद्धि मानता है तथा जल में तीर्थ बुद्धि समझता है और ज्ञानी पुरुषों में आत्मबुद्धि और स्वकीय बुद्धि तथा तीर्थ बुद्धि नहीं मानता है वह अत्यन्त दुष्ट बैल या गदहा है ॥१३॥ यहां पर आस्तिक लोग भूमि के विकार की पूजा नहीं करते और भूमि के पदार्थों में उनकी पूज्य बुद्धि नहीं है किन्तु भौम पदार्थों में व्यापक जो श्रीमन्नारायण हैं उन्हीं में पूज्य बुद्धि रखकर उन्हीं व्यापक की पूजा करते हैं ऐसे पुरुष निन्दनीय नहीं हो सकते हैं। निन्दनीय वे हो सकते हैं जो व्यापक को छोड़कर केवल भूविकार में पूज्य बुद्धि रखते हैं। इससे साबित हो गया कि श्रीमद्भागवत में मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं है। तब वे लोग यह कहते हैं कि वेद में मूर्तिपूजा नहीं लिखी हुई है। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जो लोग वेद नही पढ़े हैं वे जो चाहें सो कह दें परन्तु जो लोग वेद पढ़े हैं वे जानते हैं कि मूर्ति का पूजन वेदों में ठसाठस भरा हुआ है देखिये लिखा है कि—नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे। नमस्ते अस्त्वश्मने येनादूडासे अस्यसि॥ अथर्व कां० १ अ० ३ मं० १॥ मैं बिजलीरूप ब्रह्म को प्रणाम करता हूँ मैं गर्जना रूप ब्रह्म को प्रणाम करता हूँ मैं पाषाण रूप ब्रह्म को प्रणाम करता हूँ जिस पाषाण से चोट लगती है ॥१॥ और भी लिखा

है कि—स वै भूमेरजायत ॥ अथर्व कां० १३ अ० ४ मं० ३५ ॥ वह अर्चावतार निश्चय करके भूमि से उत्पन्न हुआ ॥३५॥ और भी लिखा है कि—योऽर्चयेत्प्रतिमां मां च स मे प्रियतरो भुवि ॥ गोपालोत्तर ता० उप० मं० ३ ॥ और जो मनुष्य मेरी मूर्ति की पूजा करता या कराता है वह पृथिवी में मुझको अत्यन्त प्रिय है ॥३॥ और भी लिखा है कि—नित्यमभ्यर्चयेद्विष्णुं पुराणं पुरुषोत्तमम् । अप्सु व्योम्नि तथार्चायां वह्नौ हृदि तथा गुरौ ॥ परा० उत्तर खं० अ० ५ श्लो० १ ॥ त्रिकालमर्चयेद्देवं प्रीतिमान्सुविशेषतः ॥२॥ प्रतिमास्वर्चयेद्देवम् ॥३॥ जल में या आकाश में या मूर्ति में या अग्नि में या हृदय में या गुरु में सर्वदा पुराण पुरुषोत्तम श्रीविष्णु भगवान् की पूजा करै ॥१॥ अत्यन्त प्रेम से सुबह दुपहरिया सांझ इन तीनों कालों में श्रीविष्णु की पूजा करै ॥२॥ मूर्ति में श्रीविष्णु की पूजा करै ॥३॥ वेदों में मूर्तिपूजा विधायक हजारों प्रमाण विद्यमान हैं, ग्रन्थ विस्तार के भय से अधिक मैं नहीं लिखता हूँ जिसको विशेष जानने की इच्छा हो वह मेरा बनाया हुआ "वैदिक मूर्तिपूजादर्श" नाम के पुस्तक को देख लेवें। इस प्रकार श्रुति इतिहास से मूर्तिपूजा जब सिद्ध हो जाती है तो आजकल के दलीलबाज लोग यह कहते हैं कि यदि युक्ति से आप हमारी शङ्काओं को दूर कर दीजिये तो हम मूर्तिपूजा को मान लेंगे। पहली शङ्का (१) क्या मूर्ति में ईश्वर घँस बैठा जो मूर्ति में ईश्वर की पूजा करते हो? पहली शङ्का का यह उत्तर

है कि क्या फोटो में फोटोवाले मनुष्य धँस बैठते हैं, क्या नोट में रुपये धँसे हुए हैं? अव्यापक होने पर भी संसार फोटो और नोट प्रतिकृति मानता है तो फिर मूर्ति में ईश्वर के व्यापक होने में क्या सन्देह है। एक मूर्ति ही में नहीं बल्कि समस्त संसार में ब्रह्म ओत-प्रोत है। इस प्रकार पहली शङ्का के समाधान होने पर तो दूसरी शङ्का होती है कि (२) मूर्ति तो मनुष्य की बनाई है। इसका उत्तर यह है कि मनुष्य की बनाई हुई स्याही और मनुष्य का बनाया हुआ कागज, मनुष्य का बनाया हुआ टाइप, मनुष्य का छापा हुआ 'वेद', 'कुरान शरीफ', 'बाईबल', 'गुरुग्रन्थसाहब', 'जिन्दावस्था' ये धर्मग्रन्थ जिन जिन लोगों के हैं उन सबकी इनमें पूज्यबुद्धि है तो नहीं मालूम कि मूर्ति में मनुष्य के बनाने से क्यों शङ्का होती है। इस प्रकार दूसरी शङ्का के समाधान होने पर तो तीसरी शङ्का होती है कि (३) मूर्ति की पूजा से ईश्वर की प्रसन्नता कैसे होगी? उत्तर—जैसे शरीर में चन्दन, तेल और माला लगाया जाता है और प्रसन्न होता है शरीर में रहनेवाला आत्मा, वैसे ही मूर्ति की पूजा करने से मूर्ति में व्यापक परमेश्वर प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार तीसरी शङ्का के समाधान होने पर चौथी शङ्का होती है कि (४) निराकार ईश्वर की मूर्ति कैसे बनेगी? इसका उत्तर यह है कि जैसे गणित करनेवाले लोग जिसका कुछ भी आकार नहीं ऐसा जो अभाव है उसकी शून्यमूर्ति बनाते हैं वैसे ही सर्वस्वरूप ईश्वर की भी मूर्ति बन जाती है। इस प्रकार

चौथी शङ्का के समाधान होने पर पाँचवीं शङ्का होती है कि (५) मूर्ति के टूटने से ईश्वर नष्ट हो जावेगा। इसका उत्तर यह है कि जैसे शरीर के नाश होने पर भी शरीरव्यापक आत्मा का नाश नहीं होता है वैसे ही मूर्ति के टूटने पर भी मूर्ति में व्यापक परमेश्वर का नाश नहीं होता है। इस प्रकार पाँचवीं शङ्का के समाधान होने पर छठवीं शङ्का होती है कि (६) नकली मूर्ति के पूजन करने से असली ईश्वर का ज्ञान कैसे होगा ? इसका उत्तर यह है कि जैसे नकशा में नकली हिमालय, गंगा, समुद्र आदिक की मूर्तियों से असली हिमालय, असली गंगा, असली समुद्र आदिक का ज्ञान हो जाता है वैसे ही नकली मूर्तियों से असली ईश्वर का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार छठवीं शङ्का के समाधान होने पर सातवीं शङ्का होती हैं कि (७) सब संसार का मालिक थोड़े से भोग लगाने से कैसे प्रसन्न हो जावेगा ? इसका उत्तर यह है कि जैसे बादशाह के यहां बहुत द्रव्य रहने पर भी उसकी प्रसन्नता के लिए रईस लोग कुछ न कुछ भेंट देते हैं और बादशाह प्रसन्न होता है वैसे ही सबका मालिक ईश्वर है तो भी भक्तों के थोड़े से भोग लगाने से प्रसन्न हो जाते हैं। इस प्रकार सातवीं शङ्का के समाधान होने पर तो आठवीं शङ्का होती है कि (८) ईश्वर तो अखण्ड है अखण्ड की मूर्ति कैसे बनेगी ? इसका उत्तर यह है कि जैसे अखण्ड मूर्तिरहित काल (समय) के गणितज्ञों ने सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग ये चार स्थूल खण्ड किये और

वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष ये माध्यमिक खण्ड किये इसके बाद अखण्ड काल के दिन, रात्रि, प्रहर, घटी आदिक खण्ड बनाकर भव्यमूर्ति घडी बनाई वैसे ही अखण्ड ईश्वर की अनन्त मूर्तियां बनती हैं और ईश्वर की अखण्डता में कोई विकार नहीं होता है। इस प्रकार आठवीं शङ्का के समाधान होने पर नौईं शङ्का होती है कि (९) मूर्ति में ईश्वर की भावना कैसी ? इसका उत्तर यह है कि जैसे शक्कर में मीठे की भावना सच्ची भावना है क्योंकि शक्कर के अणु अणु में मीठा व्यापक है वैसे ही मूर्ति में ईश्वर की भावना सच्ची भावना है, क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक हैं। इस प्रकार नौईं शङ्का के समाधान होने पर दशवीं शङ्का होती है कि (१०) जो मूर्तियां औरङ्गजेब का अनिष्ट नहीं कर सकीं वे हमारी क्या सहायता करेंगी। इसका इसका उत्तर यह है कि जैसे विकाशवादवाले और नास्तिक लोग निराकार ईश्वर का खण्डन करते हैं लेकिन निराकार ईश्वर उन सबों का अनिष्ट नहीं करते हैं तौभी निराकार ईश्वर माना जाता है वैसे ही यदि औरङ्गजेब ने मूर्ति का खण्डन किया और मूर्ति ने उसका अनिष्ट नहीं किया तौभी मूर्तिपूजा अवश्य करनी चाहिये। इस प्रकार दशवीं शङ्का के समाधान होने पर तो अन्तिम ग्यारहवीं शङ्का करते हैं कि (११) हमने मूर्तिपूजा से किसी भी पुजारी को लाभ होते नहीं देखा। इसका उत्तर यह है कि इतिहासों में स्पष्ट लिखा हुआ है कि उद्धव, ध्रुव, प्रह्लाद, अम्बरीष, मुचकुन्द, मार्कण्डेय आदि

Scanned with OKEN Scanner

अनेक भगवद्भक्तों का मूर्ति की पूजा से कल्याण हुआ है। इस प्रकार के दलील से भी जब मूर्तिपूजा सिद्ध हो जाती है तब कुछ लोग यह कहते हैं कि मूर्ति के प्रकार की होती है? इसका उत्तर श्रीमद्भागवत में लिखा है कि—शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती। मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता॥ श्रीमद्भा० स्कं० ११ अ० २७ श्लो० १२॥ पत्थर की बनी हुई①, काठ की बनी हुई②, लोहा आदि धातु की बनी हुई③, लीपी हुई④, लिखी हुई फोटो आदि⑤, बालू की⑥, मानसी⑦ और मणि की बनी हुई⑧ यह आठ प्रकार की मूर्ति कही गई है॥१२॥ आठ प्रकार की मूर्ति सिद्ध होने पर तो प्रश्न करते हैं कि क्या परमात्मा हाथ में आयुध रखता है कि आपलोग मूर्तियों में बनवाते हैं? इसका उत्तर यह है कि यजुर्वेद में परमात्मा के आयुध के विषय में लिखा है कि—नमस्ते आयुधाय॥ यजु० अ० १६ मं० १४॥ हे भगवान्! आपके आयुध के लिये नमस्कार करता हूँ॥१४॥ इस मन्त्र से जब परमात्मा का आयुध साबित हो जाता है तब यह प्रश्न करते हैं कि क्या परमात्मा को स्त्री भी है कि आपलोग मूर्ति के साथ स्त्री की प्रतिमा रखते हैं। इसका उत्तर यह है कि यजुर्वेद परमात्मा की स्त्री का वर्णन करता है कि—श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ॥ यजु० अ० ३१ मं० २२॥ हे श्रीमन्नारायण-देव श्रीदेवी और लक्ष्मीदेवी ये दोनों आपकी पत्नी हैं॥२२॥ इस मन्त्र से यह सिद्ध हो गया कि ईश्वर की पत्नी है। बस

Scanned with OKEN Scanner

अब पूर्वोक्त प्रकार से परस्वरूप के जो पर १, व्यूह २, विभव ३, अन्तर्यामी ४ और अर्चावतार ५ ये पांच प्रकार के भेद हैं इन सबों के लक्षणस्वरूप का निरूपण हो गया ॥१८॥

मूल—पुरुषार्थेषु[1] धर्मो[2] नाम[3] प्राणिरक्षणौप-यिकतया[4] क्रियमाणा[5] वृत्तिविशेषाः[6] ॥१६॥

टीका—(पुरुषार्थेषु[1]) पुरुषार्थस्वरूप जो धर्म १, अर्थ २, काम ३, आत्मानुभव ४, भगवदनुभव ५ ये पांच प्रकार के कहे हैं इन पुरुषार्थों में (धर्मः[2]) धर्म (नाम[3]) किसको कहते हैं कि (प्राणिरक्षणौपयिकतया[4]) जीवों की रक्षा के निमित्त (क्रियमाणाः[5]) क्रियमाण जो (वृत्तिविशेषाः[6]) वृत्तिविशेष हैं। अर्थात् जिसके करने से जीव की रक्षा होवै उसको धर्म कहते हैं। इसीसे लिखा है कि—धर्मं चर। धर्मान्न प्रमदितव्यम् ॥ तैत्तिरी० शिक्षाध्या० १ वल्ली १ अनुवा० ११ मं० १ ॥ धर्म को करो। धर्म से प्रमाद नहीं करना ॥१॥ और नीतिज्ञों ने भी कहा है कि—आहारनिद्राभयमैथुनं च समानमेतत्पशुभिर्नराणाम्। धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥ खाना, सोना, डरना, स्त्रीप्रसङ्ग करना ये सब पशु और मनुष्य के समान हैं निश्चय करके मनुष्यों में एक धर्म अधिक विशेष है धर्म से रहित मनुष्य पशु के तुल्य हैं ॥ और भी लिखा है—अर्थाः पादरजोपमा गिरिनदीवेगोपमं यौवनम् आयुष्यं जललोल-

Scanned with OKEN Scanner

बिन्दुचपलं फेनोपमं जीवनम् । धर्मं यो न करोति निन्दितमतिः स्वर्गार्गलोद्घाटनं पश्चात्तापयुतो जरापरिगतः शोकाग्निना दह्यते ॥ धन पैर की धूलि के समान है और यौवन पहाडी नदी के वेग के समान है तथा आयु जल के बुल्ला के समान है और जीवन गाज के समान है जो निन्दितमति स्वर्ग के अर्गल खोलनेवाला धर्म को नहीं करता है वह पीछे वृद्धावस्था आने पर ताप से युक्त शोकरूपी अग्नि से जलता है ॥ एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ॥ एक सुहृद् धर्म ही है जो मरने पर भी साथ जाता है ॥ और मनुस्मृति में लिखा है कि—श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः । इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ मनु० अ० २ श्लो० ९ ॥जो मनुष्य श्रुति स्मृति में कहे हुए धर्म को करता है वह मनुष्य इस लोक में कीर्ति को पाता है और परलोक में अनुत्तम सुख को पाता है ॥९॥ इससे अपने अपने धर्म को अवश्य पालन करना चाहिये ॥१९॥

मूल—[१]अर्थो [२]नाम [३]वर्णाश्रमानुरूपं [४]धनधान्ये [५]संगृह्य [६]देवताविषयेषु [७]पित्र्येषु [८]च [९]कर्मसु [१०]प्राणिविषयेषु [११]चोत्[१२]कृष्टदेशकालपात्राणि [१३]ज्ञात्वा [१४]धर्मबुद्ध्या [१५]व्ययकरणम् ॥२०॥

टीका—(अर्थः[१]) अर्थ (नाम[२]) किसको कहते हैं कि (वर्णाश्रमानुरूपम्[३]) जो अपने वर्ण और आश्रम के योग्य (धनधान्ये[४]) धन और धान आदिक अन्न को (संगृह्य[५]) संग्रह करके (देवताविषयेषु[६]) देवताओं के कार्य में (पित्र्येषु[७]) पितरों के (च[८]) और (कर्मसु[९]) कार्य में (प्राणिविषयेषु[१०]) जीवों के कार्य में (च[११]) और (उत्कृष्टदेशकालपात्राणि[१२]) अच्छे देश काल पात्र को (ज्ञात्वा[१३]) जानकर (धर्मबुद्ध्या[१४]) धर्म की बुद्धि से (व्ययकरणम्[१५]) खर्चा करना। क्योंकि लिखा है कि—उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम्। तडागोदरसंस्थानां परिवाह इवाम्भसाम्॥ उपार्जन किये हुए धन की रक्षा त्याग ही है जैसे तडाग के उदर में स्थित जल के लिये मोरी बनाई जाती है। अर्थात् जिस कूप या तालाब का जल खर्च नहीं होता है उसमें कृमि पड़ जाते हैं और दुर्गन्धि आने लगती है वैसे ही जिस धन में से धर्म में खर्च नहीं होता है वह धन थोड़े दिनों में नष्ट हो जाता है। और भी लिखा है कि—यदधोधः क्षितौ वित्तं निचखान मितंपचः। तदधोनिलयं गन्तुं चक्रे पन्थानमग्रतः॥ कृपण लोग जो धन नीचे पृथिवी में खनकर गाड़ देते हैं वह धन नीचे पाताल में जाने के लिये पहले से मार्ग कर लेता है॥ और भी लिखा है कि—धनेन किं यो न ददाति नाश्नुते॥ धन होने से क्या जो न दान देता है न भोग करता है॥ इससे यह सिद्ध हो गया कि जिस अर्थ में से देव पितर और जीवों के कार्य में धर्म बुद्धि से खर्च होता है

वही अर्थ है ॥२०॥

मूल—कामो[1] नाम[2] ऐहलौकिकः[3] पारलौकिक[4]श्च[5] द्विविधः[6] ॥२१॥

टीका—(कामः[1]) काम (नाम[2]) किसको कहते हैं कि जो विषय (ऐहलौकिकः[3]) इस लोक में भोगा जाता है तथा (पारलौकिकः[4]) जो विषय परलोक में भोगा जाता है (च[5]) और वह काम ऐहलौकिक १, पारलौकिक २ इस भेद से (द्विविधः[6]) दो प्रकार का है ॥२१॥

मूल—तत्र[1]ैहलौकिकः[2] पितृमातृरत्नधनधान्यान्नपानीयदारपुत्रमित्रपशुगृहक्षेत्रचन्दनकुसुमताम्बूलवस्त्रादिपदार्थेषु[3] शब्दादिविषयानुभवप्रयुक्तसुखविशेषाः[4] ॥२२॥

टीका—(तत्र[1]) जो ऐहलौकिक १ और पारलौकिक २ ये दो प्रकार के काम कहे हैं इसमें (ऐहलौकिकः[2]) ऐहलौकिक काम उसको कहते हैं कि जो इस लोक में (पितृमातृरत्नधनधान्यान्नपानीयदारपुत्रमित्रपशुगृहक्षेत्रचन्दनकुसुमताम्बूलवस्त्रादिपदार्थेषु[3]) पिता, माता, रत्न, धन, धान्य, अन्न, जल, स्त्री, पुत्र, मित्र, पशु, घर, भूमि, चन्दन, फूल, पान, वस्त्र, भूषण

आदिक पदार्थों में (शब्दादिविषयानुभवप्रयुक्तसुखविशेषाः[४]) शब्द आदिक विषयों के अनुभव करने से उत्पन्न सुख विशेष हैं ॥२२॥

मूल—पारलौकिको[१] नाम[२] एतद्विलक्षणेषु[३]-तेजोरूपेषु[४] स्वर्गादिलोकेषु[५] गत्वा[६] क्षुत्पिपासा[७]-शोकमोहजरामरणादिकं विना[८]र्जितपुण्या[९]णुरूप-ममृतपानं[१०] कृत्वा[११]प्सरोभिः[१२] सह[१३] शब्दादिविषया[१४]-नुभवकरणम् ॥२३॥

टीका—(पारलौकिकः[१]) पारलौकिक काम (नाम[२]) किसको कहते हैं कि जो (एतद्विलक्षणेषु[३]) इस लोक से विलक्षण (तेजोरूपेषु[४]) तेजोमय (स्वर्गादिलोकेषु[५]) स्वर्ग आदिक लोकों में (गत्वा[६]) जा करके (क्षुत्पिपासाशोकमोहजरामरणादिकम्[७]) भूख, प्यास, शोक, मोह, बूढापन, मरण आदिक से (विना[८]) रहित होकर। स्वर्गलोक में भूख, प्यास आदिक नहीं लगते हैं यह कठोपनिषद् में लिखा है कि—स्वर्गे लोके न भयं किंच-नास्ति न तत्रत्वं न जरया बिभेति। उभे तीर्त्वाशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ कठोपनिषद् अ० १ वल्ली० १ मं० १२ ॥ स्वर्गलोक में मरणादिक किसीका भय नहीं है और

वहां पर बूढापन भी नहीं होता और भूख और प्यास इन दोनों को पार करके शोक से रहित पुरुष स्वर्गलोक में हर्ष को प्राप्त करता है ॥१२॥ (अर्जितपुण्यानुरूपम्[९]) पहिले के किये हुए पुण्यकर्म के अनुरूप (अमृतपानम्[१०]) अमृतपान को (कृत्वा[११]) करके (अप्सरोभिः[१२]) अप्सराओं के (सह[१३]) साथ (शब्दादि-विषयानुभवकरणम्[१४]) शब्द आदिक विषयों का अनुभव करना। इसको पारलौकिक काम कहते हैं। इन दोनों ऐहलौकिक १ और पारलौकिक २ कामों को कठोपनिषद् में लिखा है कि—

शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व बहून्पशून्हस्तिहिरण्यमश्वान। भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥ कठ० अ० १ वल्ली० १ मं० २३ ॥ एतत्तुल्यमिदं मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि-कामानां त्वा कामभाजं करोमि ॥२४॥ ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व। इमा रामाः सरथाः स तूर्या नहीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः। आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः ॥ यमराज नचिकेता से कहता है कि तू सौ वर्षवाले बेटा और नाती को मुझसे वर मांग लो और बहुत से पशु, हाथी, घोड़ा, सोना, पृथिवी का बड़ा भारी राज्य मुझसे मांग लो और तुमको जितने वर्ष जीने की इच्छा हो उतने वर्ष जीवो ॥२३॥ और हे नचिकेतस ! यदि तुम धन और चिर जीविका को अपने वर के तुल्य मानते हो तो उसको मांग लो इस महाभूमि में मैं तुमको समस्त कामों

Scanned with OKEN Scanner

का भाजन करता हूँ ॥२४॥ मनुष्य लोक में जो जो काम दुर्लभ हैं उन सबों को अपनी इच्छा के अनुसार मुझसे मांग लो और इन सुन्दर स्त्रियों को रथ के सहित तथा नृत्यवाद्य के सहित मुझसे मांग लो ऐसे चीज मनुष्यों को नहीं मिलते हैं ऐ नचिकेतस ! मुझसे दी हुई इन सुन्दर स्त्रियों के साथ तुम आनन्द करो मरण को मत पूछो। इन पूर्वोक्त मन्त्रों से स्पष्ट ऐहलौकिक और पारलौकिक दो प्रकार का काम सिद्ध होता है ॥२३॥

मूल—केवलो[1] नाम[2] दुःखनिवृत्तिमात्ररूपं[3] केवलात्मानुभवं[4] च[5] मोक्ष[6] इति[7] वदन्ति[8] ॥२४॥

टीका—(केवलः[1]) पुरुषार्थ स्वरूप में केवल (नाम[2]) किसको कहते हैं कि जिससे (दुःखनिवृत्तिमात्ररूपम्[3]) समस्त दुःखों के केवल निवृत्तिमात्र हो जाय तथा (केवलात्मानुभवम्[4]) केवल अपनी आत्मा का ही अनुभव होय (च[5]) और इसी केवल को ही आत्मानुभाव कहते हैं तथा इसी केवल आत्मा के अनुभव को (मोक्षः[6]) मोक्ष (इति[7]) ऐसा कोई कोई सांख्य-शास्त्रानुयायी लोग (वदन्ति[8]) कहते हैं ॥२४॥

मूल—अथ[1] परमपुरुषार्थलक्षणमोक्षो[2] नाम[3] प्रारब्धकर्मविशेषाणामवश्यानुभाव्यानां[4] पुण्य[5]-

पापानां नाशोऽस्ति जायते परिणमते विवर्द्धते-
ऽपक्षीयते विनश्यतीत्युक्तप्रकारेण षड्भावविका-
रास्पदं तापत्रयाश्रयं भगवत्स्वरूपं चावृत्य
विपरीतज्ञानोत्पादकं संसारवर्द्धकं स्थूलशरीर-
मुपेक्षया त्यक्त्वा सुषुम्ना नाड्या शिरःकपालं
भित्त्वा निर्गत्य सूक्ष्मशरीरेणाकाशं गन्तुं मार्गं
प्राप्योष्णकिरणमण्डलान्तर्गत्वा सूक्ष्मशरीरं
वासनारेणुं च विरजास्नानेन दूरीकृत्य सकल-
तापनिवर्तकामानवकरस्पर्शं च प्राप्य शुद्धसत्त्वा-
त्मकं पञ्चोनिषन्मयं ज्ञानानन्दजनकं भगवदनु-
भवैकपरं तेजोमयमप्राकृतविग्रहं लब्ध्वा किरीट
युक्तेष्वमरेषु प्रत्युद्गच्छत्सु श्रीमहामणिमंडपं
प्राप्य लक्ष्मीसहितं भूमिनीलानायकं देवसमूहेषु

सेवमानेषु[६१] ज्योतिःप्रवाहे[६२] आविर्भवद्रूपं[६३] श्रीवैकुण्ठ[६४]नाथं नित्यम[६५]नुभूय[६६] नित्यकैङ्कर्य्यस्वभावविशिष्टतया[६७] स्थितिः[६८] ॥२५॥

टीका—(अथ[1]) जैसे पाणिनि मुनि अपने बनाये हुए व्याकरण सूत्र में "आदैच् वृद्धिः" ऐसा पाठ न करके "वृद्धिरादैच्" ॥ अ० १ पा० १ सू० १ ॥ यहां पर वृद्धि शब्द को आदि में मङ्गलार्थ पाठ करके फिर भी—भूवादयो धातवः॥ अ० १ पा० ३ सू० १ ॥ इस सूत्र में वकार मङ्गलार्थ किये हैं यह इसी सूत्र के भाष्य में श्रीपतञ्जलि महर्षि कहे हैं। वैसे ही ग्रन्थ के आदि में अथशब्दात्मक मङ्गल करने पर भी श्रीलोकाचार्य स्वामीजी फिर से अर्थपञ्चक ग्रन्थ के मध्य में अथशब्दात्मक मङ्गल किये हैं। इसके बाद (परमपुरुषार्थ-लक्षणमोक्षः[2]) परमपुरुषार्थलक्षणमोक्ष (नाम[3]) किसको कहते हैं कि जो (प्रारब्धकर्मविशेषाणाम्[4]) प्रारब्ध कर्म विशेष के (अवश्यानुभाव्यानाम्[5]) अवश्य पीछे होनेवाले (पुण्यपापानाम्[6]) पुण्य और पाप के (नाशे[7]) नाश होने पर (अस्ति[8]) है (जायते[9]) उत्पन्न होता है (परिणमते[10]) परिणाम होता है (विवर्द्धते[11]) बढ़ता है (अपक्षीयते[12]) क्षीण होता है (विनश्यति[13]) विनष्ट होता है (इति[14]) इस (उक्तप्रकारेण[15])

उक्त प्रकार से (षड्भावविकारास्पदम्[१६]) छः भावविकार का स्थान यह शरीर श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध पूर्वार्ध के दूसरे अध्याय के सत्ताईसवें श्लोक में भी यह लिखा है कि—षडात्मा ॥ श्रीमद्भा० स्कं० १० पूर्वा० अ० २ श्लो० २७ ॥ इस शरीर के छः स्वभाव हैं ॥२७॥ और (तापत्रयाश्रयम्[१७]) आध्यात्मिक १ आधिभौतिक २ आधिदैविक ३ इन तीन प्रकार के दुःख का आश्रय यह शरीर है यह लिखा है कि—तापत्रय-महाज्वालावह्निभिः परिवेष्टितम् ॥ परा० उत्तर खं० अ० ६ श्लो० ५ ॥ तीन तापरूप अग्नि की ज्वाला से यह शरीर परिवेष्टित है ॥५॥ और (भगवत्स्वरूपम्[१८]) भगवान् के स्वरूप को (च[१९]) भी (आवृत्य[२०]) आवरण करके (विपरीतज्ञानोत्पादकम्[२१])विपरीत ज्ञान को उत्पन्न करनेवाला और (संसार-वर्द्धकम्[२२]) जन्ममरणरूप संसार को बढ़ानेवाला (स्थूल-शरीरम्[२३])यह स्थूल शरीर है, इस देह को जीव (उपेक्षया[२४]) उपेक्षा करके (त्यक्त्वा[२५]) छोडकर (सुषुम्ना[२६]) सुषुम्ना (नाड्या[२७]) नाडी के द्वारा सुषुम्ना नाडी के विषय में लिखा है कि—मूलाधारत्रिकोणस्था सुषुम्ना द्वादशांगुला। मूलार्धच्छिन्न-वंशाभा ब्रह्मनाडीति सा स्मृता ॥ योगिशि० अ० ५ मं० १७ ॥ मूलाधार चक्र जो गुदा मार्ग में रहता है वहां त्रिकोण में स्थित बारह अङ्गुली की आधा मूलच्छिन्न बांस की आभा के समान सुषुम्ना है उसीको ब्रह्मनाडी कहते हैं ॥१७॥ योगाभ्यास से जिस सुषुम्ना नाडी करके (शिरःकपालम्[२८]) शिर के कपाल

ब्रह्मरन्ध्र को, जिसका वर्णन है कि—सहस्रदलसंख्यातं ब्रह्मरन्ध्रे महापथि ॥ योगचू० मं० ६ ॥ दोनों भौंहों के ऊपर मस्तक में दशवां द्वार जो ब्रह्मरन्ध्र महामार्ग है वहां पर हजार दलवाला कमल है ॥६॥ उस ब्रह्मरन्ध्र को (भित्त्वा[२९]) सद्गुरु के उपदेश से भेद करके (निर्गत्य[३०]) उसी छेद से निकलकर (सूक्ष्मशरीरेण[३१]) सूक्ष्म शरीर से (आकाशम्[३२]) आकाश में (गन्तुम्[३३]) जाने के लिए (मार्गम्[३४]) मार्ग को (प्राप्य[३५]) पा करके (उष्णकिरणमण्डलान्तः[३६]) सूर्य के मण्डल के भीतर (गत्वा[३७]) जाकर (सूक्ष्मशरीरम्[३८]) सूक्ष्म शरीर को (वासना-रेणुम्[३९]) और अनादिकाल के संसार की वासनारूप रेणु को (च[४०]) भी (विरजास्नानेन[४१]) श्रीविरजा नदी के स्नान से (दूरीकृत्य[४२])दूर करके (सकलतापनिवर्त्तकामानवकरस्पर्शम्[४३]) समस्त दैहिक दैविक भौतिक तापों के दूर करनेवाले अमानव पुरुष के हाथ के स्पर्श को (च[४४]) और (प्राप्य[४५]) पा करके (शुद्धसत्त्वात्मकम्[४६]) निर्मल सत्त्वगुणात्मक (पञ्चोपनिषन्-मयम्[४७]) पञ्चोपनिषन्मय (ज्ञानानन्दजनकम्[४८]) ज्ञान और आनन्द को उत्पन्न करनेवाला (भगवदनुभवैकपरम्[४९]) केवल एक भगवान के अनुभव में तत्पर (तेजोमयम्[५०]) तेजोमय (अप्राकृतविग्रहम्[५१]) अप्राकृत दिव्य शरीर को (लब्ध्वा[५२]) पाकर (किरीटयुक्तेषु[५३]) किरीट कुण्डल आदिक भूषणों को धारण किये हुए (अमरेषु[५४]) श्रीवैकुंठनिवासी देवों के (प्रत्यु-द्गच्छत्सु[५५]) आगे आकर मिलने पर वह जीव (श्रीमहामणि-

मण्डपम्[५६]) श्रीमहामणिवाला मण्डप को (प्राप्य[५७]) पा करके (लक्ष्मीसहिम्[५८]) देवी लक्ष्मीजी सहित (भूमिनीलानायकम्[५९]) भूदेवी और नीलादेवी के नायक को (देवसमेहेषु[६०]) समस्त देवगण (सेवमानेषु[६१]) जिनकी सेवा कर रहे हैं और (ज्योतिः-प्रवाहे[६२]) तेज के प्रवाह में (आविर्भवद्रूपम्[६३]) प्रगट हो रहा है रूप जिनका ऐसे (श्रीवैकुण्ठनाथम्[६४]) श्रीवैकुण्ठनाथ भगवान् को (नित्यम्[६५]) सर्वदा (अनुभूय[६६]) अनुभव करके (नित्य-कैङ्कर्यस्वभावविशिष्टतया[६७]) नित्यकैङ्कर्यभगवान् के करने को स्वभाव विशेष से (स्थिति[६८]) स्थिति करना इसीको मोक्ष और भगवदनुभव कहते हैं यही परम पुरुषार्थ है। इसीको यामुनाचार्य स्वामीजी आलवन्दारस्तोत्र में वर्णन किये हैं कि—कदाहमेकान्तिकनित्यकिंकरः प्रहर्षयिष्यामि सनाथ-जीवितम् ॥ आलव० श्लो० ४९ ॥ इस श्लोक का भाव जिसको जानना हो वह मेरी बनाई हुई स्तोत्र रत्न के "भावप्रकाशिका" नाम की टीका को देख ले। यहां पर बहुत से लोग यह कहते हैं; इसमें कोई प्रमाण नहीं है कि यहां पर मोक्षस्थान न्यारा है और मार्ग में विरजा नदी है तथा किरण के द्वारा जीव जाता है और मोक्ष को पाकर फिर जन्म-मरण में नहीं पड़ता है। इस विषय में बहुत से प्रमाण हैं परन्तु ग्रन्थ के विस्तार के भय से अधिक न लिखकर एक दो प्रमाण मैं देता हूँ। देखिये लिखा है कि—त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ यजु० अ० ३१ मं० ३ ॥ दिव-लोक में श्रीमन्नारायणदेव के त्रिपाद्विभूति नाम का मोक्षस्थान

है ॥३॥ और भी लिखा है कि—तत्र संवाहिनीं दिव्यां विरजां वेदसम्भवाम् ॥ पराश० उत्तरखं० अ० ६ श्लो० १६ ॥ वहां पर वेद से उत्पन्न होनेवाली दिव्य विरजा नाम की नदी है ॥१६॥ और भी लिखा है कि—उपर्युपरि गत्वा विरजां नदीं प्राप्य तत्र स्नात्वा भगवद्ध्यानपूर्वकं पुनर्निमज्ज्य तत्रापञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गभोगसाधनं सूक्ष्मशरीरमुत्सृज्य ॥ त्रिपाद्विभूति महाना० अ० ५ ॥ ब्रह्मादिक लोकों से ऊपर ऊपर जाकर विरजा नदी को प्राप्त करके उस नदी में स्नान करके भगवान् के ध्यानपूर्वक फिर से स्नान करके वहां पर अपञ्चीकृत भूत से उत्पन्न सूक्ष्माङ्ग के भोग का साधन सूक्ष्म शरीर को छोड़कर यह जीव जाता है ॥५॥ और भी लिखा है कि—ते य एवमेतद्विदुर्ये चामी अरण्ये श्रद्धां सत्यमुपासते तेऽर्चिरभिसम्भवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षण्मासानुदङ्ङादित्य एति मासेभ्यो देवलोकादादित्यमादित्याद्वै द्युतं तान्वैद्युतान्पुरुषोऽमानुष एत्य ब्रह्मलोकान् गमयति तेषु ब्रह्मलोकेषु परा परावतो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः ॥ बृहदार० अ० ६ ब्रा० २ मं० १५ ॥ वे जो लोग इसको जानते हैं और जो ये लोग वन में श्रद्धा और सत्य की उपासना करते हैं वे लोग शरीर छूटने पर सूर्य के किरण को प्राप्त करते हैं और सूर्य के किरण से दिन को और दिन से आपूर्यमाण पक्ष को तथा आपूर्यमाणपक्ष से जो कि मकर की संक्रान्ति से छः मास उत्तरायण सूर्य रहते हैं उन माघ, फागुन, चैत, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ इन महीनों को और

इन महीनों से देवलोक को तथा देवलोक से आदित्य को और आदित्य से वैद्युत को तथा वैद्युत से अमानव पुरुष पाते हैं और अमानव पुरुष मिल करके उन जीवों को ब्रह्मलोक में प्राप्त कराता है जिस ब्रह्मलोक में नित्य और मुक्त जीव बसते हैं इन सब जीवों की पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥१५॥ और वेदान्तसूत्र में भी लिखा है कि—अर्चिरादिना तत्प्रथितेः ॥ वेदा० अ० ४ पा० ३ सू० १ ॥ तडितोऽधिवरुणसम्बन्धात् ॥ वेदा० अ० ४ पा० ३ सू० ३ ॥ आतिवाहिकस्तल्लिङ्गात् ॥ वेदा० अ० ४ पा० ३ सू० ४ ॥ वैद्युते नैव ततस्तच्छ्रुतेः ॥ वेदान्त अ० ४ पा० ३ सू० ६ ॥ अनावृत्तिश्शब्दादनावृत्तिश्शब्दात् ॥ वेदा० अ० ४ पा० ४ सू० २२ ॥ अर्चिरादिमार्ग से जाना जीव का उपनिषदों में प्रसिद्ध होने से ॥१॥ और तडित का अधिवरुण से सम्बन्ध होने से ॥३॥ वहां आतिवाहिकों के चिह्न होने से ॥४॥ वैद्युत करके अमानव पुरुष का संयोग होता है क्योंकि ऐसी ही श्रुति कहती है ॥६॥ मुक्त जीव का फिर से जन्म मरण नहीं होता है शब्द प्रमाण होने से ॥२२॥ इन प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि मृत्यु लोक से अलग मोक्षस्थान है और अर्चिरादि मार्ग से जीव जाता है तथा बीच में विरजा नाम की नदी मिलती है और मुक्तजीव का फिर से जन्म मरण नहीं होता है। इस प्रकार के पूर्वोक्त प्रमाणों से पुरुषार्थ स्वरूप के जो धर्म १ अर्थ २ काम ३ आत्मानुभव ४ भगवदनुभव ५ ये पांच प्रकार के भेद हैं इन सबों के लक्षण स्वरूप संक्षेप से निरूपण हो

गया ॥२५॥

मूल—उपायेषु[1] कर्मयोगो[2] नाम[3] यज्ञदान[4]-तपोध्यान–सन्ध्यावन्दन–पञ्चमहायज्ञाद्यग्निहोत्र–तीर्थयात्रा–पुण्यक्षेत्रवास-कृच्छ्रचान्द्रायण--पुण्य-नदीस्नानव्रत–चातुर्मास्यफलमूलाशन–शास्त्राभ्यास-भगवत्समाराधन-जपतर्पणादिकर्मानुष्ठान-प्रयुक्तकायशोषणेन पापनाशोत्पत्तौ[5] तत्तदिन्द्रिय[6][7]-[8]द्वारा प्रसरतो धर्मभूतज्ञानस्य[9] शब्दादीनाम[10]विषय[11]-त्वेन विषयापेक्षायां[12] यमनियमासनप्राणायाम[13]-प्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिरूपाष्टाङ्गयोगक्रमेण योगाभ्यासकालपर्यन्तं[14] ज्ञानस्य[15]आत्मनो[16] विषयता[17]-करणम् ॥२६॥

टीका—(उपायेषु[1]) उपायस्वरूप जो कर्म १, ज्ञान २, भक्ति ३, प्रपत्ति ४, आचार्याभिमान ५ ये पांच प्रकार के कहे हैं इन उपायों में (कर्मयोगः[2]) कर्मयोग (नाम[3]) किसको कहते हैं

कि (यज्ञदानतपोध्यानसन्ध्यावन्दनपञ्चमहायज्ञाग्निहोत्रतीर्थ-यात्रा-पुण्यक्षेत्रवासकृच्छ्रचान्द्रायण-पुण्यनदीस्नानव्रतचातुर्मा-स्य-फल-मूलाशन-शास्त्राभ्यासभगवत्समाराधनजपतर्पणादिक-र्मानुष्ठानप्रयुक्तकायशोषणेन[४]) पहला कर्म यज्ञ है जिसको कि यजुर्वेद में लिखा है कि—यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ यजु० अ० ३१ मं० १६ ॥ देवता सब यज्ञ से श्रीविष्णु भगवान् की पूजा किये यही प्राचीन धर्म था ॥१६॥ और भी लिखा है—दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत् ॥ अर्थात् दर्श और पूर्णमास से यजन करे। और भी लिखा है कि—स्वाराज्यकामो राजसूयेन यजेत् ॥ स्वाराज्य की कामना वाला राजसूय यज्ञ करे। और भगवद्गीता में तीन प्रकार के यज्ञ लिखे हैं कि—अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ॥ यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥ गी० अ० १७ श्लो० ११ ॥ यज्ञ करना ही योग्य है ऐसे मन को समाधान करके फल की इच्छा से रहित जो विधिपूर्वक यज्ञ किया जाता है वह सात्त्विक यज्ञ है ॥११॥ और— अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्। इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ गी० अ० १७ श्लो० १२ ॥ हे भरतश्रेष्ठ! जो फल की इच्छा करके और दम्भ के वास्ते भी यज्ञ करे उस यज्ञ को राजस जानो ॥१२॥ और—विधिहीनमसृष्टान्नं मंत्रहीनमदक्षिणम् ॥ श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥१३॥ वेद की विधि से हीन और उचित अन्न के त्यागरहित तथा मन्त्रहीन विना

Scanned with OKEN Scanner

दक्षिणा के और श्रद्धा से रहित यज्ञ तामस कहा है ॥१३॥ यहां पर बहुत से लोग यह कहते हैं कि ज्ञानियों को यज्ञ नहीं करना चाहिए। लेकिन उनलोगों का कथन ठीक नहीं है क्योंकि लिखा है कि—यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्। यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ गी० अ० १८ श्लो० ५ ॥ एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च। कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ गी० अ० १८ श्लो० ६ ॥ यज्ञ-दानतपरूपकर्म का त्याग नहीं करना ही योग्य है क्योंकि यज्ञ, दान और तप ये कर्म ज्ञानियों को भी पवित्र करनेवाले हैं॥५॥ हे पार्थ! संग और फलों को छोड़ करके ये यज्ञादिक भी कर्म करने योग्य हैं ऐसा निश्चित मेरा उत्तम मत है॥६॥ इससे सिद्ध हो गया कि ज्ञानियों को भी यज्ञ करना चाहिए। और भी लिखा है कि—अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ मनु० अ० ३ श्लो० ७६ ॥ यजमान से अग्नि में सम्यक् प्रकार से दी हुई आहुति सूर्य को प्राप्त करती है तथा सूर्य से वर्षा होती है और वर्षा से अन्न होता है तथा अन्न के उपभोग से लड़का-लड़की उत्पन्न होते हैं॥७६॥ इससे यह सिद्ध होता है कि बिना यज्ञ के सृष्टि नहीं हो सकती है इससे यज्ञ अवश्य करना चाहिए। दूसरा कर्म दान है। दान किसको कहते हैं यह लिखा है कि—न्यायार्जितं धनं श्रान्ते श्रद्धया वैदिके जने। अन्यद्वा यत्प्रदीयेत तद्दानं प्रोच्यते मया ॥ जाबालदर्शनोपनिषद् खं० २ मं० ७ ॥ श्रान्त

वैदिक जन के लिए न्याय से अर्जित धन या अन्य जो कुछ श्रद्धा से दिया जाता है उसको दान मैं कहता हूँ ॥७॥ वह दान तीन प्रकार का भगवद्गीता में लिखा है कि—दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ गी० अ० १७ श्लो० २० ॥ जो दान देना ही चाहिये ऐसी बुद्धि करके अच्छे देश में और अच्छे समय में तथा जिससे अपना कुछ उपकार न हो और सुपात्र हो ऐसे को दिया जाता है वह दान सात्त्विक कहा गया है ॥२०॥ यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः। दीयते च परिक्लिष्टं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ गी० अ० १७ श्लो० २१ ॥ जो प्रत्युपकार के लिए अथवा फल के निमित्त करके या किसी प्रकार के क्लेश से दान दिया जाय वह राजस कहा है ॥२१॥ और—अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते। असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ गी० अ० १७ श्लो० २२ ॥ जो दान तिरस्कार और अवज्ञापूर्वक बिना देश में तथा बिना समय में और कुपात्रों के लिए दिया जाता है वह दान तामस कहा है ॥२२॥ और दान के विषय में तैत्तिरीयोपनिषद् में भी लिखा है कि—श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम् ॥ तैत्ति० शिक्षाध्या० व० १ अनु० ११ मं० ३ ॥ श्रद्धा से दान देने योग्य है। बिना श्रद्धा से भी देने योग्य है। श्री से देने योग्य है। लज्जा से देने योग्य है। भय से देने योग्य है और संविद् से देने योग्य है ॥३॥ इससे यह साबित

हो गया कि किसी प्रकार से दान अवश्य देना चाहिए। तीसरा कर्म तप है। तप किसको कहते हैं यह लिखा है कि—वेदोक्तेन प्रकारेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः। शरीरशोषणं यत्तत्तप इत्युच्यते॥ जाबाल० खं० मं० ३॥ वेदोक्त प्रकार के द्वारा कृच्छ्र चान्द्रायणादिकों करके शरीर को जो सुखा दिया जाता है उसको तप कहते हैं॥३॥ वह तप भगवद्गीता में तीन प्रकार का लिखा है कि—देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्। ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥ गी० अ० १७ श्लो० १४॥ देव, ब्राह्मण, गुरु और विद्वानों का पूजन पवित्रता सरलता ब्रह्मचर्य और अहिंसा यह शरीर सम्बन्धी तप कहा है॥१४॥ अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्। स्वाध्यायाभ्यासनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥ गी० अ० १७ श्लो० १५॥ जो वचन उद्वेगकारक न होय और सत्य तथा प्रिय और हित होय तथा वेद का अभ्यास करना यह वाणीमय तप कहा है॥१५॥ और—मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः। भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥ गी० अ० १७ श्लो० १६॥ मन की प्रसन्नता कोमलता मौन तथा मन को वश करना और अन्तःकरण की शुद्धता यह तप मानस कहाता है॥१६॥ और भी लिखा है कि—श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः। अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते॥ गी० अ० १७ श्लो० १७॥ फल की इच्छा न करनेवाले योग्य पुरुष करके परम श्रद्धा से जो कायिक वाचिक और मानसिक ये तीन प्रकार

के तप किये जाते हैं वे तप सात्त्विक कहे जाते हैं ॥१७॥ और सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् । क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ गी० अ० १७ श्लो० १८ ॥ जो तप सत्कार मान और पूजा के लिये दम्भ करके किया जाता है सो यहां शास्त्र में राजस चल और नाशवान् कहा है ॥१८॥ और मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः । परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ गी० अ० १७ श्लो० १९ ॥ जो तप दुराग्रह करके अपनी आत्मा को पीडा दे करके दूसरे के बिगाड़ने के लिये किया जाय वह तामस कहा है ॥१९॥ और चौथा कर्म ध्यान है ध्यान कैसे स्वरूप करना चाहिये यह लिखा है कि— श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुक्तामणिविभूषितम् । शुद्धस्फटिकसंकाशं चन्द्रकोटिसमप्रभम् । एवं ध्यायेन्महाविष्णुं सर्वदा विनयान्वितः ॥ ध्यानबिन्दू० मं० २९ ॥ श्रीवत्स तथा कौस्तुभ और मुक्तामणि से जिनका वक्षस्थल सुशोभित है तथा शुद्धस्फटिक के समान और करोडों चन्द्रमा की प्रभा के तुल्य प्रभावाले जो श्रीविष्णु भगवान् हैं उनका विनययुक्त सर्वदा ध्यान करे ध्यान चिन्ता का अपरपर्यायवाचक है। पांचवां सन्ध्यावन्दन कर्म है। जिसके विषय में लिखा है कि—अहरहः सन्ध्यामुपासीत ॥ रोज रोज सन्ध्यावन्दन कर्म करना चाहिये। सन्यावन्दन का काल लिखा है—पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठत्सावित्रीमर्कदर्शनात् । पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ॥ मनु० अ० २ श्लो० १०१ ॥ प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त से प्रारम्भ करके सूर्यदर्शन

पर्यन्त सावित्री को जपे और सायंकाल सूर्यास्त से पहले ही प्रारम्भ करके अच्छे प्रकार से जब तारे दिखाई देने लगें तब तक सावित्री को जपे ॥१०१॥ सन्ध्यावन्दन विधि जिसको जानना हो वह मेरा बनाया हुआ "यतीन्द्रधर्ममार्तण्ड" नाम के ग्रन्थ को देख ले। छठवां पञ्चमहायज्ञादिक कर्म है। क्योंकि मनुस्मृति में लिखा है कि—पञ्चसूनागृहस्थस्य चुल्लीपेषण्युपस्करः। कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्। मनु० अ० ३ श्लो० ६८ ॥ गृहस्थों के पांच हिंसा के स्थान हैं चुल्ही १, चक्की २, झाड़ू ३, ओखर मूसल ४ और जल के कलश ५ क्योंकि इन सबको अपने कार्य में लाते हैं इससे पाप से सम्बन्ध होता है ॥६८॥ तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः। पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥ मनु० अ० ३ श्लो० ६९ ॥ उन चुल्ही आदिक पांच से उत्पन्न हत्याओं को दूर करने के लिए क्रम से महर्षियों ने पञ्चमहायज्ञ गृहस्थों के लिए कहे हैं ॥६९॥ वह पञ्चयज्ञ कौन हैं यह लिखा है कि—अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ मनु० अ० ३ श्लो० ७० ॥ पढ़ना पढ़ाना इसको ब्रह्मयज्ञ कहते हैं और तर्पण को पितृयज्ञ कहते हैं, अग्नि में जो हवन होता है उसको देवयज्ञ कहते हैं तथा भूतबलि को भूतयज्ञ कहते हैं और अतिथिकी पूजा को नृयज्ञ कहते हैं ॥७०॥ इन पूर्वोक्त पञ्चमहायज्ञों को नित्य प्रति गृहस्थ को करना चाहिये। ग्रन्थ विस्तार के भय से पञ्चमहायज्ञ करने की विधि

मैं नहीं लिखता हूँ। यहां पर पञ्चमहायज्ञ में जो पितृयज्ञ है उसके विषय में बहुत से लोग यह कहते हैं कि मरे हुए का पितर नाम नहीं है क्योंकि वेद में मरे पितरों का श्राद्ध तर्पण नहीं लिखा है। इसका उत्तर यह है कि जो लोग वेदाध्ययन नहीं किये हैं वे जो चाहें सो कहें परन्तु जो वेद पढ़े हैं वे जानते हैं कि मरे पितरों का श्राद्ध वेदविहित है देखिये लिखा है कि—यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम्। वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥ अथर्व० कां० १८ अ० ३ मं० १३ ॥ अथर्ववेद में लिखा है कि मनुष्यों में सबसे पहले जो जन्म लेकर मरा तथा यमलोक में सबसे पहले मरकर आया उस विवस्वान् के वंश में प्रथम उत्पन्न हुए मनुष्यों को इस लोक से लोकान्तर में मिलानेवाले यमराज का हविष्य से सत्कार करो ॥१३॥ और भी लिखा है कि—यद्वो अग्निरदहादेकमंगं पितृलोकं गमयञ्जातवेदः। तद्व एतत्पुनरा-प्याययामि सांगाः सर्वे पितरो मादयध्वम् ॥ अथर्व० कां० १८ अ० ४ मं० ६४ ॥ हे पितरो! जातवेद नामक अग्नि ने आपके पितृलोक ले जाने के समय आपका जो एक पांचभौतिक शरीर जलाकर भस्म कर दिया है उस शरीर को मैं फिर आप्यायित करता हूँ आप इस दूसरे शरीर से सशरीर होकर स्वर्ग में आनन्द करें ॥६४॥ उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा तृतीयाह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥ अथर्व० कां० १८ अ० २ मं० ४८ ॥ उदन्वती नामक आकाश की प्रथम कक्षा है

जहां तक जल की गति है पीलुमति आकाश की दूसरी मध्यम कक्षा है और तीसरी उत्तम कक्षा का नाम प्रद्यौ है जिसमें पितर रहते हैं ॥४८॥ और भी लिखा है कि—ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः। तेभ्यो घृतस्य कुल्यैषा मधुधारा व्युन्दती ॥ अथर्व० कां० १८ अ० ४ मं० ५७ ॥ जो हमारे पितर जीवस्वरूप हैं तथा जो जन्म लेकर मर चुके हैं और मरने के बाद जो अन्यत्र जन्म ले चुके हैं तथा जो यज्ञभगवान् के गर्भ में हैं उन सबको हमारी दी हुई टपकती मधुधारा और घृत की कुल्या प्राप्त हो ॥५७॥ और भी लिखा है कि— ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ॥ अथर्व कां० १८ अ० २ मं० ३५ ॥ जो पितर अग्नि में दग्ध हुए हैं या जो नहीं दग्ध हुए हैं द्यु लोक के मध्य भाग में स्वधा से जो तृप्त होते हैं ॥३५॥ और भी लिखा है कि—ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः। सर्वास्तानग्न आवह पितृन्हविषे अत्तवे ॥ अथर्व कां० १७ अ० २ मं० ३४ ॥ हे अग्ने ! जो पितर जमीन में गाड़े गये हैं तथा जो जल में बहाये गए हैं और जो अग्नि में जलाये गये तथा जो जङ्गल में फेंक दिये गए हैं उन सब पितरों को आप हविष्य खाने के लिए लिवा आइये ॥३४॥ और भी लिखा है कि—आयन्तु नः पितरः सोम्यासो अग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ॥ यजु० अ० १९ मं० ५८ ॥ देवयान मार्ग से गये हुए अग्नि के द्वारा जलाये हुए सोम के ऊपर रहनेवाले हे पितृगणो ! हमारे इस पितृयज्ञ में

आओ ॥५८॥ और मासिक श्राद्ध का भी वर्णन है कि--सोदक्रामत् सा पितृनागच्छत् तां पितरोऽघ्नत सामासिसमभवत् तस्मात्पितृभ्यो मास्युपगास्यं ददति प्रपितृयाणं पथां जानाति य एवं वेद ॥ अथर्व० कां० ८ अ० १० मं० ३ ॥ विराड्रूप ब्रह्म की एक शक्ति पितरों में पहुँची पितरों में उसका प्रवेश हुआ पितरों से वह चन्द्रमास में पहुँची इस कारण पितरों का मास-मास में श्राद्ध किया जाता है जो इस बात को समझता है वही पितृयान मार्ग से पितृलोक में जाता है ॥३॥ इन पूर्वोक्त वेद प्रमाणों से जब मृतक पितरों का श्राद्ध साबित हो जाता है तब वे लोग यह कहते हैं कि तीन पिता पितामह प्रपितामह जो मरे हैं उन्हीं के लिए पिण्ड तीन ही आपलोग देते हैं और जो आपलोगों के मरे पितर हैं उनके लिए क्यों पिण्ड दान नहीं देते हैं ? इसका उत्तर यह है कि यजुर्वेद में तीन हो का नाम लिखा है इससे हमलोग तीन ही पिण्डदान देते हैं यह लिखा है कि--पितृभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा-नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः ॥ यजु० अ० १९ मं० ३६ ॥ स्वधा के अन्न से तृप्त होनेवाले पिता पितामह प्रपितामह के लिए स्वधायुक्त अन्न और नमस्कार प्राप्त हो ॥३६॥ इस प्रकार से जब पिता पितामह प्रपितामह के लिए पिण्डदान साबित हो जाता है तब वे लोग यह कहते हैं कि ब्राह्मण खिलाने को वेद में नहीं लिखा हुआ है। इसका उत्तर यह है कि स्पष्ट अथर्ववेद ने ब्राह्मण भोजन के विषय में कहा है कि—

इदमोदनं निदधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम् ॥ अथर्व० कां० ४ अ० ३४ मं० ८ ॥ पुत्र कहता है कि मैं अपने पिता के निमित्त ब्राह्मणों में इस पक्वान ओदन को रखता हूँ वह ओदन बिस्तृत है मध्य में आये हुए लोकों को जीतनेवाला है और स्वर्ग में जानेवाला है ॥८॥ और मनुस्मृति में लिखा है कि--निमन्त्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान्द्विजान् । वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥ मनु० अ० ३ श्लो० १८९ ॥ निमन्त्रित ब्राह्मणों के पास में पितर सब अदृश्य रूप से ठहरते हैं और वायु के समान पीछे पीछे चलते हैं तथा बैठ जाने पर पास में बैठ जाते हैं ॥१८९॥ इस प्रकार से श्रुति स्मृति में मृतक श्राद्ध के विषय मे हजारों प्रमाण विद्यमान हैं ग्रन्थ विस्तार के भय से अधिक मैं नहीं लिखता हूँ जिसको विशेष जानने की इच्छा हो वह मेरा बनाया हुआ "वैदिक श्राद्ध दर्पण" नाम के पुस्तक को देख ले । वेद से मृतक श्राद्ध सिद्ध होने पर भी आजकल के दलीलबाज लोग यह कहते हैं कि यदि युक्ति से आप हमारी शङ्काओं को दूर कर दीजिये तो हम मृतक श्राद्ध को मान लेंगे । पहली शङ्का (१) क्या यहां से कोई तार लगा है जो दिया हुआ पदार्थ पितरों के पास पहुँचा देता है ? पहली शङ्का का यह उत्तर है कि आजकल तो बिना तार के भी तार निकला है यह सब लोग प्रायः जानते हैं परन्तु यदि तार ही में आग्रह है तो देखिये सूर्यनारायण का जो मध्याह्न काल का किरण है वही तार है उसीके द्वारा पितरों

के पास पहुँचता है इसीसे मध्याह्न काल में पितृयज्ञ किया जाता है। इस प्रकार पहली शङ्का के समाधान होने पर तो दूसरी शङ्का होती है कि (२) आपलोग सबके लिए हविष्यादिक से पिण्ड बनाते हैं परन्तु यदि पितर मरकर सांप या बिच्छू या सिंह या मच्छी या पिल्लू हुए हों तो उनके लिए हविष्य क्या होगा ? इसका उत्तर यह है कि जैसे मनिआर्डर छपरा के पोष्ट में यदि किया जायेगा तो यहां जो रुपया चलता है वही पोष्ट में दिया जायेगा तो भी यदि इङ्गलैण्ड में जायेगा तो वहां उतने ही का सोना बनकर मिलेगा और यदि हैदराबाद निजाम में जायेगा तो उतने ही का वहां का सुरती रुपया बनकर मिलेगा और यदि सिङ्गापुर टापू में भेजा जायेगा तो उतना ही का वहां का रुपया मिलेगा वैसे ही यहां पर यद्यपि हविष्य आदिक का पिण्डदान दिया जाता है तौ भी जिस जिस योनि में सब पितर जन्म लेते हैं उस उस योनि के खाद्य पदार्थ जितना दिया जाता है उतने ही का तैयार होकर मिलता है। इस प्रकार दूसरी शङ्का के समाधान होने पर तो तीसरी शङ्का होती है कि (३) पिण्डा तो जैसे का तैसे बना रहता है कैसे माना जाय कि पितरों को मिल गया ? उत्तर— जैसे मधुमक्खियां या भँवरा प्रति फूलों से रस को लेते हैं यदि न लेते तो मधु कैसे तैयार होता परन्तु तौ भी फूल जैसे का तैसा बना रहता है वैसे ही अदृश्य रूप से पितर आते हैं और पिण्डा के रस को ले लेते हैं तौ भी पिण्डा जैसे के तैसे

बना रहता है। इस प्रकार तीसरी शङ्का के समाधान होने पर तो चौथी शङ्का होती है कि (४) गौ, लोटा, धोती, रूपैया आदिक तो ब्राह्मणों के घर में रहता है तो कैसे माना जाय कि दिया हुआ चीज पितरों को मिल गया? जैसे पोष्ट में जो रूपैया मनिआर्डर किया जाता है वह वहां ही रह जाता है तौभी जिसके पास भेजा जाता है उसको मिल जाता है वैसे ही यद्यपि जो चीज दिया जाता है वह ब्राह्मणों के घर में रहता है तो भी पितरों को मिल जाता है! इस प्रकार चौथी शङ्का के समाधान होने पर तो अन्तिम पांचवीं शङ्का होती है कि (५) क्या पितरों के पास चीज मिलने का किसी दूत या पत्र के द्वारा खबर आजतक कभी भी मिला है कि माना जाय कि मरे पितरों के लिए जो दिया जाता है वह मिलता है? हां अग्नि दूत है जो सर्वदा साथ रहता है और वेद के द्वारा यह खबर मिलता है कि जो दिया जाता है वह पितरों को अवश्य मिलता है और यजुर्वेद में अग्निदत्त का जाना पितरों के पास साबित होता है कि—त्वमग्न ईडितः कव्यवाहना वाढव्यानि सुरभीणि कृत्वी प्रादाः पितृभ्यः स्वधया॥ यजु० अ० १९ मं० ६६॥ हे कव्य के ढोनेवाले अग्निदेव! स्तुति किया हुआ तुम ढोने योग्य हविष्य को सुगन्धिदार करके स्वधा के द्वारा पितरों के लिए दिये हो॥६६॥ इस मन्त्र से स्पष्ट अग्नि का देना साबित होता है। और त्रेतायुग में श्रीदशरथजी के मरने पर भरतजी श्राद्ध किये हैं यह वाल्मीकि रामायण में लिखा है और द्वापर

Scanned with OKEN Scanner

में महाभारत होने पर कौरवों की स्त्रियां अपने पति के निमित्त जलदान दिये हैं यह महाभारत के स्त्रीपर्व में स्पष्ट लिखा है इससे वैदिक मतवालों को मृतक श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। सातवां अग्निहोत्र कर्म है। क्योंकि लिखा है कि—यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्॥ जब तक जीये तब तक अग्निहोत्र करे। यहां पर बहुत से लोग यह कहते हैं कि—अग्निहोत्रं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्। देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥ अग्निहोत्र १ तथा गोमेधयज्ञ २ और संन्यास ३ तथा मांस से श्राद्ध ४ और देवर से पुत्रोत्पन्न करना ५ ये पांच कर्म कलियुग में मना है। इससे कलियुग में अग्निहोत्र नहीं करना चाहिए। इसका उत्तर वहां ही लिखा है कि—यावद्वर्णविभागोऽस्ति यावद्वेदः प्रवर्तते। तावन्न्यासोऽग्निहोत्रं च कर्तव्यं हि कलौ युगे॥ जब तक वर्ण का विभाग रहे और वेद का प्रचार रहे तब तक संन्यास और अग्निहोत्र कलियुग में अवश्य करना चाहिए। इस प्रमाण से साबित होता है कि अभी कलियुग में भी अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिए। आठवां तीर्थयात्रा कर्म है। श्रीरङ्गम् १, काञ्ची २, पन्ना नृसिंह ३, वेंकटेश ४, तोताद्रि ५, आल्वारत्रिनगरी ६, श्रीकूर्म ७, भूतपुरी ८, संपत्कुमार ९, पद्मनाभजनार्दन १०, जगन्नाथ ११, कुमारी कन्या १२, पक्षितीर्थ १३, कुम्भकोण १४, सेतुबन्धन १५, बदरीनारायण १६, नैमिषारण्य १७, द्वारिका १८, प्रयाग १९, मथुरा वृन्दावन २०, अयोध्या २१, गया २२, पुष्करराज २३, पञ्चवटी नासिक २४,

मुक्तिनारायण २५, जनकपुर २६, काशी २७, सिद्धाश्रम (बक्सर) २८ आदिक तीर्थों में भ्रमण करना। नौवां पुण्यक्षेत्र में वास करना कर्म है। कुरुक्षेत्र १, भृगुक्षेत्र २, नृसिंह क्षेत्र ३, हरिहर क्षेत्र ४, वराह क्षेत्र ५ आदिक पवित्र क्षेत्रों में निवास करना। दशवां तप्तकृच्छ्र कर्म है इसको पराशर स्मृति में लिखा है कि—त्र्यहमुष्णं पिबेद्वारि त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत्। त्र्यहमुष्णं पिबेत्सर्पिर्वायुं भक्षेद्दिनत्रयम् ॥ परा० अ० ४ श्लो० ७ ॥ षट्पलं तु पिबेदम्भस्त्रिपलं तु पयः पिबेत्। पलमेकं पिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥ परा० अ० ४ श्लो० ८ ॥ तप्तकृच्छ्र पुरुष पहले तीन दिन तक छः पल गरम जल को पीवे इसके बाद तीन दिन तीन तीन पल गरम दुग्ध पान करे इसके पीछे तीन दिन एक एक पल गरम घी का पान करे इसके बाद तीन दिन तक केवल वायु भक्षण करके रहे यह तप्तकृच्छ्र का विधान है ॥ ७ ॥ ८ ॥ ग्यारहवां चान्द्रायण कर्म है। इसको मनुस्मृति में लिखा है कि—एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत्। उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ मनु० अ० ११ श्लोक २१६ ॥ प्रातःकाल सायंकाल मध्याह्नकाल में स्नान करता हुआ पूर्णमासी के दिन पन्द्रह ग्रासों को खाकर कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के क्रम से एक एक ग्रास घटावे ऐसे चतुर्दशी को एक ग्रास भोजन करके अमावस्या को व्रत करे फिर शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लगा के एक एक ग्रास बढ़ाता जाय ऐसे पूर्णमासी को पुनः पन्द्रह ग्रास भोजन करे तो इसको पिपीलिकामध्य नाम

Scanned with OKEN Scanner

का चान्द्रायण कहते हैं ॥२१६॥ एतमेव विधिं कृत्स्नमाचरेद्यव-मध्यमे । शुक्लपक्षादिनियतश्चरंश्चान्द्रायणं व्रतम् ॥ मनु० अ० ११ श्लो० २१७ ॥ और यवमध्य नाम के चान्द्रायण में भी शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से एक एक ग्रास को बढ़ाकर पूर्णमासी को पन्द्रह ग्रास करे उसके पीछे कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से एक एक ग्रास घटा करके अमावस्या को उपवास करे तो इसको यवमध्य नाम का चान्द्रायण कहते हैं ॥२१७॥ अष्टावष्टौ समश्नीयाः पिण्डान्मध्यंदिने स्थिते । नियतात्मा हविष्याशी यतिश्चान्द्रायणं चरन् ॥ मनु० अ० ११ श्लो० २१८ ॥ और एक महीने तक जो मध्याह्न के समय में प्रतिदिन आठ आठ ग्रास भोजन करके दिन रात बिताता है उसको यतिचान्द्रायण कहते हैं ॥२१८॥ चतुरः प्रातरश्नीयात्पिण्डान्विप्रः समाहितः । चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं स्मृतम् ॥ मनु० अ० ११ श्लो० २१६ ॥ और प्रातःकाल चार ग्रास भोजन करे तथा सूर्य के अस्त होने पर चार ग्रास भोजन करे तो इसको शिशु-चान्द्रायण मुनियों ने कहा है ॥२१६॥ बारहवां पुण्यनदी स्नान कर्म है । गंगा १, यमुना २, सरस्वती ३, गोमती ४, सरयू ५, नारायणी ६, कृष्णा ७, काबेरी ८, गोदावरी ६, ताम्रपर्णी १०, पयस्विनी ११, कृतमाला १२ आदि पवित्र नदियों में धारा-भिमुख स्नान करना । तेरहवां व्रत कर्म है जिसको यजुर्वेद ने लिखा है कि—व्रतेन दीक्षामाप्नोति ॥ यजु० अ० १६ मं० ३० ॥ व्रत से दीक्षा प्राप्त होती है ॥३०॥ बारह मास में शुक्ल और

कृष्णपक्ष के भेद से चौबीस एकादशी व्रत तथा कृष्ण जन्माष्टमी व्रत और रामनौमी व्रत तथा नृसिंह चतुर्दशी व्रत और वामन द्वादशी व्रत इन अट्ठाइस व्रतों को वर्ष वर्ष में करना॥ चौदहवां चातुर्मास्य कर्म है। क्योंकि लिखा है कि—चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति॥ जिसको चातुर्मास्य के विषय में अधिक जानना हो वह मेरा बनाया हुआ जो "यतीन्द्रधर्ममार्तण्ड" है उसके सातवें उल्लास को देख ले। पन्द्रहवां फल मूलों का आहार करना कर्म है। क्योंकि लिखा है—आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः। स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थिनां विप्रमोक्षः॥ छान्दो० अ० ७ खं० २६ मं० २॥ आहार शुद्ध होने से अन्तःकरण शुद्ध होता है और अन्तःकरण शुद्ध होने से ध्रुवा स्मृति होती है और स्मृति लाभ होने से समस्त बन्धन निवृत्त हो जाता है॥२॥ आहार भगवद्गीता में तीन प्रकार का लिखा है कि—आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः। रस्याः स्निग्धाः स्थिराः हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥ गी० अ० १७ श्लो० ८॥ जो आहार आयुष्य हुशियारी बल आरोग्य सुख और प्रीति को बढ़ानेवाला होय तथा रसयुक्त चिक्कन बहुत काल रहनेवाले हृदय का वर्द्धक ऐसे आहार सात्त्विक पुरुषों को प्रिय होते हैं॥८॥ कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः। आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥ गी० अ० १७ श्लो० ९॥ अति कटु अति खट्टा अति नमकवाला अति गरमागरम अति तीक्ष्ण अति

रूखा और कलेजा में अति दाह देनेवाला आहार राजसी पुरुषों को प्रिय होता है यह आहार दुःख शोक और रोगों को देनेवाला होता है ॥९॥ यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्। उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ गी० अ० १७ श्लो० १० ॥ जिस भोजन के बने हुए एक पहर हो गया हो तथा जो रसविहीन हो और सूना या दुर्गन्धवाला जो हो तथा बासी हो और जूठा हो तथा जो अपवित्र हो ऐसा भोजन तामसी पुरुषों को प्रिय होता है ॥१०॥ सोलहवां शास्त्र का अभ्यास करना कर्म है। क्योंकि लिखा है कि—स्वाध्यायान्मा प्रमदः ॥ तैत्तिरी० अ० वल्ली १ मं० १ अनुवा० ११ ॥ स्वाध्यायरूप शास्त्र के अभ्यास से प्रमाद नहीं करना ॥१७॥ सत्रहवां भगवान् श्रीमन्नारायण का पूजा कर्म है। अठारहवां जप कर्म है। जप किसको कहते हैं यह श्रीजाबालदर्शनोपनिषद् में लिखा है कि—गुरुणा चोपदिष्टोऽपि तत्र सम्बन्धसंयुतः। वेदोक्तेनैव मार्गेण मन्त्राभ्यासो जपः स्मृतः ॥ जाबा० खं० २ मं० ११ ॥ श्रीगुरुजी के उपदेश देने पर भी उनमें सम्बन्ध रखते हुए जो वेदोक्त मार्ग से मन्त्र का अभ्यास किया जाता है उसको जप कहते हैं ॥११॥ जपस्तु द्विविधः प्रोक्तो वाचिको मानसस्तथा ॥ जाबा० खं० २ मं० १३ ॥ वाचिको पांशुरुच्चैश्च द्विविधः परिकीर्तितः। मानसो मननध्यानभेदाद् द्वैविध्यमाश्रितः ॥१४॥ उच्चैर्जपादुपांशुश्च सहस्रगुणमुच्यते। मानसश्च तथोपांशोः सहस्रगुणमुच्यते ॥१५॥ जप दो प्रकार का कहा हुआ है एक वाचिक १ और दूसरा

मानस २ ॥१३॥ वाचिक जप उपांशु १ और उच्चैः २ भेद से दो प्रकार का कहा गया है और मानस जप भी मनन १ और ध्यान २ भेद से दो प्रकार का होता है ॥१४॥ उच्चैःस्वर के जप से हजार गुना उपांशु जप का फल है और उपांशु जप से हजार गुना मानस जप का गुण है ॥१५॥ हारीतस्मृति में वाचिक उपांशु और मानस का लक्षण लिखा हुआ है कि—

यदुच्चनीचोच्चरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः । मन्त्रमुच्चारयन्वाचा जपयज्ञस्तु वाचिकः ॥ हारीतस्मृ० अ० ४ श्लो० ४२ ॥ जिसका ऊँचा और नीचा उच्चारण स्पष्ट पद का अक्षरों के शब्दों से मन्त्र पाठ किया जाता है उस जप को वाचिक कहते हैं ॥४२॥

शनैरुच्चारयन्मंत्रं किञ्चिदोष्ठौ प्रचालयेत् । किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यात्स उपांशुर्जपः स्मृतः ॥ हा० अ० ४ श्लो० ४३ ॥ और जिसमें कुछ कुछ ओठ चलता हो और धीरे धीरे मन्त्र का उच्चारण हो तथा कुछ कुछ शब्द सुनाता हो तो उसको उपांशु जप कहते हैं ॥४३॥ धिया पदाक्षरश्रेण्या अवर्णमपदाक्षरम् । शब्दार्थचिन्तनाभ्यान्तु तदुक्तं मानसं स्मृतम् ॥ हारी० अ० ४ श्लो० ४४ ॥ बुद्धि से ही पद और अक्षर की पंक्ति का स्मरण हो वर्ण और पदाक्षर सुनाई न आवे केवल शब्द और अर्थ का विचार जिसमें हो उसको मानस जप कहते हैं ॥४४॥ इन जपों को करना । उन्नीसवां तर्पणादिक कर्म है । इन पूर्वोक्त कर्मों के अनुष्ठान से शरीर को सुखा करके (पापनाशोत्पत्तौ[५]) पाप के नाश की उत्पत्ति होने पर (तत्[६]) उस (तत्[७]) उस (इन्द्रिय-

द्वारा प्रसरतः[८]) इन्द्रियों के द्वारा फैलनेवाले (धर्मभूतज्ञानस्य[९]) धर्मभूतज्ञान के (शब्दादीनाम्[१०]) शब्द आदिक (अविषयत्वेन[११]) विषय न होने से और (विषयापेक्षायाम्[१२]) शब्दादिक विषयों की अपेक्षा होने पर (यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिरूपाष्टाङ्गयोगक्रमेण[१३]) यम १, नियम २, आसन ३, प्राणायाम ४, प्रत्याहार ५, धारणा ६, ध्यान ७ और समाधि ८ रूप इस अष्टाङ्गयोग के क्रम से, जाबाल दर्शनोपनिषद् में यम आदिक का वर्णन है कि—अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम्। क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चैव यमा दश ॥ जाबालदर्शं० खं० १ मं० ६ ॥ अहिंसा १, सत्य २, अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४, दया ५, कोमलता ६, क्षमा ७, धीरता ८, मिताहार ९ और शौच १० ये दश यम हैं ॥६॥ इससे विरुद्ध जो योगशास्त्र में लिखा है कि—अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥ योग० अ० १ पा० २ सू० ३० ॥ अहिंसा १, सत्य २, अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४, अपरिग्रह ५ ये पांच यम हैं ॥३०॥ इसको नहीं मानना चाहिये। इस बात को भगवान् वेदव्यासजी भी कहते हैं कि—एतेन योगः प्रत्युक्तः ॥ वेदा० अ० २ पा० १ सू० ३ ॥ इससे वेदविरुद्ध योगशास्त्र का सिद्धान्त खण्डित हो गया। अब अहिंसा आदिक का वर्णन देखिये लिखा है कि—वेदोक्तेन प्रकारेण विना सत्यं तपोधन। कायेन मनसा वाचा हिंसाऽहिंसा न चान्यथा ॥ जाबा० खं० १ मं० ७ ॥ हे तपोधन! सत्य करके वेद में कही हुई हिंसा को बराबर जो

मन वाणी शरीर से किसी जीव को दुःख न देना इसीको अहिंसा कहते हैं ॥७॥ चक्षुरादीन्द्रियैर्दृष्टं श्रुतं घ्रातं मुनीश्वर। तस्यैवोक्तिर्भवेत्सत्यं विप्र तन्नान्यथा भवेत् ॥ जाबालद० खं० १ मं० ६ ॥ नेत्रादिक इन्द्रियों करके देखा हुआ सुना हुआ सूंघा हुआ हे मुनीश्वर ब्राह्मण उसीका है ऐसी उक्ति को सत्य कहते हैं ॥६॥ अन्यदीये तृणे रत्ने काञ्चने मौक्तिकेऽपि च। मनसा विनिवृत्तिर्या तदस्तेयं विदुर्बुधाः॥ जाबालद० खं० १ मं० ११ ॥ दूसरे के घास, रत्न, सोना या मोती आदिक चीजों में मन को भी कभी न जाने देना इसको ज्ञानी लोग अस्तेय कहते हैं॥११॥ कायेन मनसा वाचा स्त्रीणां च परिवर्जनम्। ऋतौ भार्या तदा स्वस्य ब्रह्मचर्यं तदुच्यते ॥ जाबालद० खं० १ मं० १३ ॥ मन वाणी और शरीर से स्त्री का परित्याग करना इसको ब्रह्मचर्य कहते हैं और यदि अपनी विवाहिता स्त्री हो तो ऋतुकाल में उससे मैथुन करे तो इसको मुनि लोग ब्रह्मचर्य कहते हैं ॥१३॥ स्वात्मवत्सर्वभूतेषु कायेन मनसा गिरा। अनुज्ञा या दया सैव प्रोक्ता वेदान्तवेदिभिः॥ जाबालद० खं० १ मं० १५ ॥ अपने जीव के बराबर सम्पूर्ण जीवों में मन वाणी शरीर से जो अनुज्ञा होती है उसीको वेदान्ती लोग दया कहते हैं ॥१५॥ पुत्रे मित्रे कलत्रे च रिपौ स्वात्मनि संततम्। एकं रूपं मुने यत्तदार्जवं प्रोच्यते मया॥ जाबालद० खं० १ मं० १६ ॥ हे मुने! पुत्र या मित्र या स्त्री या शत्रु या अपनी आत्मा इन सबों में सर्वदा एक रूप रहना इसको आर्जव कहते हैं ॥१६॥ कायेन

मनसा वाचा शत्रुभिः परिपीडिते । बुद्धिक्षोभनिवृत्तिर्या क्षमा सा मुनिपुङ्गव ॥ जाबालद० खं० १ मं० १७ ॥ हे मुनिपुङ्गव ! मन वाणी शरीर करके शत्रुओं से अतिपीडित होने पर भी जो बुद्धि में क्षोभ नहीं होता है उसको क्षमा कहते हैं ॥१७॥ वेदादेव विनिर्मोक्षः संसारस्य न चान्यथा । इति विज्ञान-निष्पत्तिधृतिः प्रोक्ता हि वैदिकैः ॥ जाबालद० खं० १ मं० १८ ॥ वेद ही से संसार छूटेगा दूसरा कोई उपाय नहीं है इस प्रकार के जो विज्ञान की निष्पत्ति उसको वैदिक लोग धृति कहते हैं ॥१८॥ अल्पमृष्टाशनाभ्यां च चतुर्थांशावशेषकम् । तस्माद्-योगानुगुण्येन भोजनं मितभोजनम् ॥ जाबा० खं० १ मं० १९ ॥ पेट के दो भाग को सुन्दर परिपकान्न से तथा तीसरे भाग को जल से भर दे और चौथे भाग को सर्वदा वायु आने जाने के लिये खाली रखे तो इस भोजन को मित भोजन कहते हैं ॥१९॥ स्वदेहमलनिर्मोक्षो मृज्जलाभ्यां महामुने । तत्तच्छौचं भवेद्बाह्यं मानसं मननं विदुः ॥ जाबालद० खं० १ मं० २० ॥ हे महामुने ! शौच दो प्रकार का होता है एक बाह्य और दूसरा मानस । उसमें मिट्टी और जल से अपने देह के मल को धोना यह बाह्य शौच है तथा आत्मा का मनन करना यह मानस शौच है ॥२०॥ अब नियम को कहता हूँ कि— तपः सन्तोषमास्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम् । सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो व्रतम् ॥ जाबालद० खं० २ मं० १ ॥ तप १, सन्तोष २, आस्तिकता ३, दान ४, ईश्वरपूजन ५, सिद्धान्तश्रवण ६, ह्री ७, मति ८, जप ९

और व्रत १० ये दश प्रकार के नियम हैं ॥१॥ इससे विरुद्ध जो योगशास्त्र में लिखा है कि—शौचसन्तोषतपस्स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥ योग० अ० १ पा० २ सू० ३२ ॥ शौच १, सन्तोष २, तप ३, स्वाध्याय ४, ईश्वरप्रणिधान ५ ये पांच नियम हैं ॥२२॥ इसको (वैदिक) मतवालों को नहीं मानना चाहिये। दश नियमों में से तप दान और जप का वर्णन पहले कर चुका हूँ अब जो बाकी हैं उन सबों का निरूपण करता हूँ। यदृच्छालाभतो नित्यं प्रीतिर्या जायते नृणाम्। तत्संतोषं विदुः प्राज्ञाः परिज्ञानैकतत्पराः ॥ जाबाल० खं० २ मं० ५ ॥ जो प्रारब्धानुसार प्राप्त हो जाय उसीमें सर्वदा जो मनुष्यों की प्रीति होती है उसीको ज्ञानी लोग सन्तोष कहते हैं ॥५॥ श्रौते स्मार्ते च विश्वासो यत्तदास्तिक्यमुच्यते ॥ जाबालद० खं० २ मं० ६ ॥ जो वेद और स्मृति में कहे हुए कर्मों में विश्वास होता है उसको आस्तिकता कहते हैं ॥६॥ रागाद्यपेतं हृदयं वागदुष्टाऽनृतादिना। हिंसादिरहितं कर्म यत्तदीश्वरपूजनम् ॥ जाबालद० खं० २ मं० ८ ॥ रागद्वेष आदिक से युक्त हृदय न हो और झूठ बोलने से वाणी दूषित न हो तथा हिंसा आदिक से रहित जो कर्म हो उसको ईश्वरपूजन कहते हैं ॥८॥ सत्यं ज्ञानमनन्तं च परमानन्दं परं ध्रुवम्। प्रत्यगित्यवगन्तव्यं सिद्धान्तश्रवणं बुधः ॥ जाबालद० खं० २ मं० ९ ॥ परब्रह्म सत्य ज्ञान अनन्त और आनन्दमय सबसे परे स्थिर है ऐसा जान लेना इसको सिद्धान्तश्रवण पण्डित लोग कहते हैं ॥९॥

Scanned with OKEN Scanner

वेदलौकिकमार्गेषु कुत्सितं कर्म यद्भवेत्। तस्मिन्भवति या लज्जा ह्रीः सैवेति प्रकीर्तिता ॥ जाबालद० खं० २ मं० १० ॥ वेद और लोक में जो निन्दित कर्म हो उसमें जो लज्जा होती है उसको ह्री कहते हैं ॥१०॥ वैदिकेषु च सर्वेषु श्रद्धा या सा मतिर्भवेत् ॥ जाबालद० खं० २ मं० ११ ॥ वैदिक समस्त कर्मों में जो श्रद्धा होती है उसको मति कहते हैं ॥११॥ और शाण्डिल्योपनिषद् में लिखा है कि—व्रतं नाम वेदोक्तविधिनिषेधानुष्ठाननैयत्यम् ॥ शाण्ड० अ० १ मं० २ ॥ सर्वदा वेदोक्त विधि और निषेध का अनुष्ठान करना इसको व्रत कहते हैं ॥२॥ अब आसन कहते हैं कि— तत्र स्थिरसुखमासनम् ॥ योग० अ० १ पा० २ सू० ४६ ॥ जिसमें सुखपूर्वक शरीर और आत्मा स्थिर हो वही आसन है ॥४६॥ आसन विशेष जिसको जानना हो वह मेरा बनाया हुआ "वैदिक योग संग्रह" नामक पुस्तक देख ले। अब प्राणायाम को कहता हूँ कि— प्राणश्च देहगो वायुरायामः कुम्भकः स्मृतः ॥ योगकुण्ड० अ० १ मं० १९ ॥ बाहर और भीतर जो वायु आता जाता है उसे रोकने को प्राणायाम कहते हैं ॥१९॥ और पातञ्जल योगदर्शन में भी लिखा है कि— तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ योग० अ० १ पा० २ सू० ४९ ॥ आसन में स्थित होकर बाहर भीतर आने जानेवाले दोनों वायु के रोकने को प्राणायाम कहते हैं ॥४९॥ अब प्रत्याहार को कहता हूँ कि— चरतां चक्षुरादीनां विषयेषु यथाक्रमम्। यत्प्रत्याहरणं तेषां

प्रत्याहारः स उच्यते ॥ योगचू० मं० १२० ॥ स्वभाव से ही यथाक्रम जो नेत्र आदिक इन्द्रियां रूप आदिक विषयों में विचरती हैं उन सबों को जो विषयों से निवारण किया जाता है उसको प्रत्याहार कहते हैं ॥१२०॥ और योगशास्त्र में भी लिखा है कि—स्वविषयासम्प्रयोगेचित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ योग० अ० १ पा० २ सू० ५४ ॥ अपने अपने विषयों के सम्बन्ध के अभाव से श्रोत्रादिक इन्द्रियों का जो चित्त के स्वरूप के अनुसार स्थित होना है उसका नाम प्रत्याहार है ॥५४॥ अब धारणा को कहता हूँ कि—देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥ योग० अ० १ पा० ३ सू० १ ॥ चित्त को किसी देश में बांधना इसको धारणा कहते हैं ॥१॥ अब ध्यान को कहता हूँ कि—तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ योग० अ० १ पा० ३ सू० २ ॥ जिस धारणा में बुद्धि और चित्त को एकाग्र हो जाना इसको ध्यान कहते हैं ॥२॥ और—तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥ योग० अ० १ पा० ३ सू० ३ ॥ स्वरूपशून्य केवल उसी अर्थ का भास होना इसको समाधि कहते हैं ॥३॥ और योगतत्त्वोपनिषद् में लिखा है कि—समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः ॥ योगत० मं० १०७ ॥ जीवात्मा और परमात्मा की समतावस्था को समाधि कहते हैं ॥१०७॥ इन पूर्वोक्त अष्टाङ्गयोग का क्रम से (योगाभ्यासकालपर्यन्तम्[१४]) योग के अभ्यास के समय तक, योग किसको कहते हैं यह लिखा है कि—योऽपानप्राणयोरैक्यं

स्वरजोरेतसोस्तथा। सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः॥ योगशि० अ० १ मं० ६८॥ एवं तु द्वन्द्वजालस्य संयोगो योग उच्यते ॥६६॥ प्राणवायु और अपानवायु के एकता तथा अपना रज और रेत तथा सूर्यस्वर और चन्द्रस्वर तथा जीवात्मा और परमात्मा इन सबों के संयोग को योग कहते हैं ॥६८-६६॥ और योगशास्त्र में लिखा है कि—योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः॥ योग०अ० १ पा० १ सू० २॥ पांच प्रकार के चित्त की वृत्तियों को जो रोकना है उसका नाम योग है ॥२॥ उन पांच वृत्तियों के नाम और लक्षण योगशास्त्र में लिखा है कि—प्रमाणविपर्यय-विकल्पनिद्रास्मृतयः॥ योग० अ० १ पा० १ सू० ६॥ प्रमाण १, विपर्यय २, विकल्प ३, निद्रा ४, स्मृति ५ ये पांच चित्त की वृत्तियां हैं ॥६॥ जिनमें— प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि॥ योग० अ० १ पा० १ सू० ७॥ प्रत्यक्ष १, अनुमान २, आगम ३ ये तीन प्रमाण हैं ॥७॥ जिनमें इन्द्रिय और अर्थ के व्यवधान-रहित संयोग से घट पट आदिक अर्थों का जो विशेष रूप करके ज्ञान होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं। और धूमादिक लिंग से दूरस्थ अग्नि आदिक पदार्थों का जो सामान्यरूप से ज्ञान होता है उसको अनुमान प्रमाण कहते हैं। तथा यथार्थ वक्ता पुरुष का जो वाक्य है उसको आगम प्रमाण कहते हैं। इन तीनों प्रमाणों में और सब प्रमाण अन्तर्भूत हो जाते हैं॥ विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्॥ योग० अ० १ पा० १ सू० ८॥ अपने स्वरूप से विरुद्ध जो मिथ्या ज्ञान बुद्धि में

स्थित हो उसको विपर्यय कहते हैं ।।८।। शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ।। यो० अ० १ पा० १ सू० ९ ।। शब्दजन्य ज्ञान के अनुसार जो वस्तु से शून्य हो उसको विकल्प कहते हैं ।।९।। अभावप्रत्ययालम्बनावृत्तिर्निद्रा ।। योग० अ० १ पा० १ सू० १० ।। अभाव प्रत्यय का आलम्बन विषय है जिस वृत्ति का उसको निद्रा कहते हैं ।।१०।। और— अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः ।। योग० अ० १ पा० १ सू० ११ ।। प्रत्यक्षादिक प्रमाण करके अनुभव किये हुए पदार्थों का जो अन्य काल में संस्कार द्वारा स्मरण होता है उसको स्मृति कहते हैं ।।११।। और अभ्यास का भी लक्षण लिखा है कि— तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ।। यो० अ० १ पा० १ सू० १३ ।। आसन में स्थित हो करके चित्त की वृत्तियों के रोकने के उपाय जो यम नियमादिक हैं उनमें प्रयत्न करना उसको अभ्यास कहते हैं ।।१४।। इन सबसे जब तक योगाभ्यास करे तब तक (ज्ञानस्य[१५]) ज्ञानस्वरूप (आत्मनः[१६]) अपने आत्मा का (विषयताकरणम्[१७]) अनुभव करना इसको कर्म कहते हैं ।।२६।।

मूल—अयं[१] च[२] ज्ञानयोगस्य[३] सहकारी[४] ऐश्वर्यस्य[५] प्रधानसाधनं[६] च[७] भवेत्[८] ।।२७।।

टीका—(अयम्[१]) यह कर्मयोग (च[२]) भी (ज्ञानयोगस्य[३]) ज्ञानयोग का (सहकारी[४]) सहकारी है (ऐश्वर्यस्य[५]) और

ऐश्वर्य का (प्रधानसाधनम्[६]) मुख्य साधन (च[७]) भी (भवेत्[८]) होता है ॥२७॥

मूल—ज्ञानयोगो[१] नाम[२] एवं[३] योगजन्य[४]-ज्ञानस्य हृदयमण्डलादित्यमण्डलप्रभृतिस्थल[५]-विशेषेषु च[६] वर्त्तमानं[७] सर्वेश्वरं[८] विषयं[९] कृत्वा[१०] तं[११] विषयं[१२] शंखचक्रगदाधरं[१३] पीताम्बरकिरीटनूपुरादिदिव्यभूषणालंकृतं[१४] लक्ष्मीसहितं[१५] चानुभूय[१६,१७] योगाभ्यासक्रमेणा[१८]नुभवकालं[१९] वर्द्धयित्वा[२०]ऽनवरत[२१]-भावनारूपत्वापादनम् ॥२८॥

टीका—(ज्ञानयोगः[१]) ज्ञानयोग (नाम[२]) किसको कहते हैं कि (एवम्[३]) इस प्रकार (योगजन्यज्ञानस्य[४]) अष्टाङ्ग योग से उत्पन्न हुए ज्ञान के (हृदयमण्डलादित्यमण्डलप्रभृतिस्थल-विशेषेषु[५]) हृदयमण्डल के कमल में, ध्यानबिन्दूपनिषद् में लिखा है कि—अष्टपत्रं तु हृत्पद्मं द्वात्रिंशत्केसरान्वितम्। तस्य मध्ये स्थितो भानुर्भानुमध्यगतः शशी ॥ मं० २६ ॥ शशिमध्यगतो वह्निर्वह्निमध्यगता प्रभा। प्रभामध्यगतं पीठं नानारत्नप्रवेष्टितम् ॥२७॥ तस्य मध्यगतं देवं वासुदेवं निरञ्जनम् ॥

श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुक्तामणिविभूषितम् ॥२८॥ शुद्धस्फटिक-संकाशं चन्द्रकोटिसमप्रभम्। एवं ध्यायेन्महाविष्णुमेवं वा विनयान्वितः ॥२९॥ बत्तिस केसर से युक्त आठ पत्रवाला हृदय में कमल है और उस कमल के मध्य में सूर्य स्थित है तथा सूर्य के मध्य में चन्द्रमा है ॥२६॥ और चन्द्रमा के मध्य में अग्नि है और अग्नि के मध्य में प्रभा है तथा प्रभा के मध्य में नाना रत्नों से वेष्टित पीठ है ॥२७॥ उस पीठ के मध्य में स्थित, श्रीवत्स और कौस्तुभ तथा मुक्ता और मणियों से विभूषित वक्षःस्थल वाले निरञ्जन वासुदेव भगवान् हैं ॥२८॥ जो शुद्ध स्फटिक के समान तथा करोडों चन्द्रमा के प्रभावाले महाविष्णु को विनय से युक्त होकर के इस प्रकार से ध्यान करे ॥२९॥ और आदित्यमण्डल आदिक स्थलविशेष में, क्योंकि लिखा है कि—ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः। केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशंखचक्रः। सूर्यमण्डल के मध्य में वर्तमान तथा कमलासन से स्थित और केयूर मकराकृति कुण्डल किरीट तथा शंख चक्रादिक को धारण किये हुए सदा सोने के समान देहवाले श्रीमन्नारायण भगवान् सदा ध्यान करने के योग्य हैं। इससे उस सूर्यमण्डलादिक स्थल में (च[६]) भी (वर्तमानम्[७]) वर्तमान (सर्वेश्वरम्[८]) सबके स्वामी श्रीमन्नारायण भगवान् को (विषयम्[९]) अनुभव (कृत्वा[१०]) करके (तम्[११]) उस (विषयम्[१२]) अनुभव को (शंखचक्रगदाधरम्[१३]) शंख चक्र गदा के धारण

करनेवाले (पीताम्बरकिरीटनूपुरादिदिव्यभूषणालंकृतम्[14]) और पीताम्बर किरीट नूपुरादिक दिव्य भूषणों से सुशोभित (लक्ष्मीसहितम्[15]) श्रीलक्ष्मीजी सहित (च[16]) और श्रीमन्नारायण को (अनुभूय[17]) अनुभव करके (योगाभ्यासक्रमेण[18]) योग के अभ्यास के क्रम से (अनुभवकालम्[19]) अनुभव के समय को (वर्धयित्वा[20]) बढ़ा करके (अनवरतभावनारूपत्वापादनम्[21]) सर्वदा श्रीमन्नारायण के स्वरूप की भावना करते रहना इसको ज्ञानयोग कहते हैं ॥२८॥

मूल—अयं[1] च[2] भक्तियोगस्य[3] सहकारी[4] कैवल्यस्य[5] प्रधानसाधनं[6] च[7] भवेत्[8] ॥२९॥

टीका—(अयम्[1]) यह ज्ञानयोग (च[2]) भी (भक्तियोगस्य[3]) भक्तियोग का (सहकारी[4]) सहकारी है और (कैवल्यस्य[5]) कैवल्य का (प्रधानसाधनम्[6]) मुख्य साधन (च[7]) भी (भवेत्[8]) होता है ॥२९॥

मूल—भक्तियोगो[1] नाम[2] तैलधारावद्[3]विच्छिन्न[4]-स्मृतिसन्तानरूपानुभवस्य प्रीतिरूपत्वापादनं[5] तत्स्वरूपे[6] विचारिते[7] प्रारब्धकर्म[8]निवृत्त्योपयिक[9]-

Scanned with OKEN Scanner

तया साधनसाध्ये[10]ऽनुष्ठाय[11] तत्संकोचविकासोपयो-[12]गिपरिणामकरणम् ॥३०॥

टीका—(भक्तियोगः[1]) भक्तियोग (नाम[2]) किसको कहते हैं कि (तैलधारावत्[3]) जैसे तेल की धारा जब गिरती है तब उस समय उसके बीच में कोई छिद्र नहीं दिखता है वैसे ही (अविच्छिन्नस्मृतिसंतानरूपानुभवस्य[4]) श्रीमन्नारायण भगवान् को सर्वदा याद करते रहना रूप अनुभव के (प्रीतिरूपत्वा-पादनम्[5]) सदा प्रीति स्वरूप को प्राप्त करना (तत्स्वरूपे[6]) और श्रीमन्नारायण का स्वरूप (विचारिते[7]) विचार करने पर (प्रारब्धकर्मनिवृत्त्या[8]) प्रारब्धकर्म की निवृत्तिके (औपयिकतया[9]) उपाय करके (साधनसाध्ये[10]) साधन और साध्य को (अनुष्ठाय[11]) अनुष्ठान करके (तत्संकोच-विकासोपयोगि-परिणामकरणम्[12]) प्रारब्ध कर्म से श्रीमन्नारायण भगवान् के स्मरण करने में यदि किसी प्रकार से संकोच हो गया हो तो उसको दूर करके श्रीमन्नारायण का सर्वदा ध्यान करना इसको भक्तियोग कहते हैं ॥३०॥

मूल—अथ[1] प्रपत्त्युपायो[2] नाम[3] एवं[4] कर्म-[5]ज्ञानसहकारिणि भक्तियोगे[6]ऽशक्तानाम[7]प्राप्तानां[8]

सुकरः[9] शीघ्रफलप्रदः[10] उपायस्य[11] सकृत्त्वात्[12] उपायानुष्ठानसमनन्तरं[13] जायमानभगवद्विषयानु-[14] भवानां प्राप्यकोटिघटितत्वात्[15] सुशकः[16] स्वरूपानु-[17] रूपश्च[18] भवति[19] इयं[20] चार्त[21]रूपप्रपत्ति[22]र्दृप्त[23]रूपप्रपत्ति-[24] श्चेति[25] द्विधा[26] ॥३१॥

टीका—(अथ[1]) कर्म ज्ञान और भक्ति के निरूपण करने के बाद (प्रपत्त्युपायः[2]) प्रपत्ति नामक उपाय (नाम[3]) किसको कहते हैं कि (एवम्[4]) इस प्रकार से (कर्मज्ञानसहकारिणि[5]) वर्ण और आश्रम के कर्म तथा ज्ञान के सहकार चाहनेवाला (भक्तियोगे[6]) भक्तियोग में (अशक्तानाम्[7]) जो मनुष्य अशक्त हैं और (अप्राप्तानाम्[8]) भगवत्स्वरूप को प्राप्त नहीं किये हुए हैं उन सबों के लिए (सुकरः[9]) प्रपत्तिरूप उपाय करना सहज है (शीघ्रफलप्रदः[10]) और शीघ्र फल देनेवाला है (उपायस्य[11]) यह प्रपत्तिरूप उपाय (सकृत्त्वात्[12]) एक ही बार किया जाता है इससे (उपायानुष्ठानसमनन्तरम्[13]) प्रपत्तिरूप उपाय के करने के तुरन्त ही पीछे (जायमानभगवद्विषयानुभवानाम्[14]) उत्पन्न जो श्रीमन्नारायण भगवान् के विषयों का अनुभव उन सब अनुभवों के (प्राप्यकोटिघटितत्वात्[15]) प्राप्यकोटि में

घटित होने से (सुशकः[16]) सब मनुष्यों के लिए प्रपात्त रूप उपाय करना सहज है। (स्वरूपानुरूपः[17]) और अपने स्वरूप के अनुरूप (च[18]) भी (भवति[19]) है (इयम्[20]) और यह प्रपत्ति (च[21]) भी (आर्तरूपप्रपत्तिः[22]) एक आर्तरूप प्रपत्ति १ (दृप्तरूपप्रपत्तिः[23]) और दूसरी दृप्तरूप प्रपत्ति है २ (च[24]) और (इति[25]) इस प्रकार के भेद से (द्विधा[26]) दो प्रकार की प्रपत्ति है इसीको शरणागति भी कहते हैं ॥३१॥

मूल—[1]तत्रा[2]र्तरूपप्रपत्ति[3]र्नाम [4]निर्हेतुकभग-
वत्प्रसादेन [5]हेतुना [6]शास्त्राभ्यासेन [7]सदाचार्योपदेश-
क्रमेण [8]यथा [9]ज्ञानोत्पत्त्यनन्तरं [10]भगवदनुभवस्य
[11]विपरीतदेहसम्बन्धस्य [12]देशिकसहवासस्य [13]च
[14]दुःसहत्वा[15]द्भगवदनुभवस्यैकान्तं [16]विलक्षणं [17]देहं[18]
[19]देशं [20]देशिकांश्च [21]प्राप्तु[22]माशा[23]धिक्येन [24]श्रीवेङ्कट-
नायकस्य [25]गर्भजन्मजराधिव्याधिमरणादिनिवर्त-
कत्वात् [26]श्रीवेङ्कटनायक![27]गत्यन्तरशून्यो [28]दासो[29]ऽहं

वेंकटांचलवासिने[30] नमः[31] इति[32] पूर्णप्रपत्तिं[33] कृत्वा[34] बहु दर्शयित्वा[35] नाशयसि[36] एतत्[37]तीरम्[38]आरुह्य[39] श्रान्तो[40]-ऽस्मि[41] प्राप्तुं[42] कृपां[43] कुरु[44] लक्ष्म्या[45] शापितोऽसि[46] अथाहं[47][48][49] गन्तुं[50] न[51]अनुजामी[52]इति[53] प्रतिरुध्या[54]ऽप्राप्तिः[55] ॥३२॥

टीका—(तत्र[1]) आर्त १ और दृप्त २ ये जो दो प्रकार की प्रपत्ति है जिसमें (आर्त्तरूपप्रपत्तिः[2]) आर्तरूप प्रपत्ति (नाम[3]) किसको कहते हैं कि (निर्हेतुकभगवत्प्रसादेन[4]) बिना किसी कारण के जीव पर भगवान की प्रसन्नता या दया होने से (हेतुना[5]) और कारण कि (शास्त्राभ्यासेन[6]) शास्त्रों का अभ्यास करने से और (सदाचार्योपदेशक्रमेण[7]) श्रेष्ठ आचार्य के उपदेश के क्रम से (यथा[8]) यथार्थ (ज्ञानोत्पत्त्यनन्तरम्[9]) ज्ञान उत्पन्न होने के बाद (भगवदनुभवस्य[10]) श्रीमन्नारायण भगवान् के अनुभव का (विपरीतदेहसम्बन्धस्य[11]) विपरीत इस पांच भौतिक शरीर का सम्बन्ध और (देशसम्बन्धस्य[12]) इस देश का सम्बन्ध (दैशिकसहवासस्य[13]) तथा देश में होनेवाले स्त्री पुत्र भाई माता पिता शिष्य आदिकों के साथ यहां वास करना (दुःसहत्वात्[14]) दुःसह हो जाता है इससे (भगवदनुभवस्य[15]) भगवान् के अनुभव करने के (एकान्तम्[16])

केवल एक योग्य (विलक्षणम्[१७]) प्रकृति से विलक्षण (देहम्[१८]) शरीर और (देशम्[१९]) देश तथा (देशिकान्[२०]) देशिकों को (च[२१]) भी (प्राप्तुम्[२२]) प्राप्त करने के लिए (आशाधिक्येन[२३]) आशा की अधिकता होने से (श्रीवेंकटनायकस्य[२४]) श्रीवेंकटेश भगवान् (गर्भ-जन्म-जराधि-व्याधिमरणादिनिवर्त्तकत्वात्[२५]) हम सबों को गर्भ और जन्म तथा जरा और मन का दुःख तथा अनेक ज्वरादिक रोग और मरणादिक से छुड़ानेवाले हैं इससे (श्रीवेंकटनायक[२६]) हे श्रीवेङ्कटेश भगवान्! (गत्यन्तर-शून्यः[२७]) आपके विना दूसरी अन्य गति नहीं है (दासः[२८]) आपका दास (अहम्[२९]) मैं हूँ इससे (वेङ्कटाचलवासिने[३०]) श्रीवेङ्कटाद्रि पर निवास करनेवाले आपके लिए (नमः[३१]) मैं साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ। प्रणाम का लक्षण लिखा है कि— उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा। पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते॥ उर से १, शिर से २, दृष्टि से ३, मन से ४, वचन से ५ और दोनों पैरों से ६ दोनों हाथों से ७ तथा दोनों जंघों से ८ जो प्रणाम किया जाता है उसको अष्टाङ्ग प्रणाम कहते हैं॥ और भी लिखा है कि— अग्रे पृष्ठे वामभागे संमुखे गर्भमन्दिरे। जपहोमनमस्कारान्न कुर्यात्केशवालये॥ केशव भगवान् के मन्दिर के आगे पीछे वामभाग में सामने और मन्दिर के भीतर जप होम और साष्टाङ्ग प्रणाम को नहीं करना चाहिए॥ और भी लिखा है कि—वस्त्रप्रावृत-देहस्तु यो नरः प्रणमेत्तु माम्। स खीत्वं जायते मूर्खः

सप्तजन्मनि भामिनि ॥ हे भामिनि! जो पुरुष वस्त्र से शरीर को ढककर मुझको प्रणाम करता है वह मूर्ख मरने पर सात जन्म तक स्त्री होता है ॥ इससे वस्त्र से शरीर को ढांककर कभी भी प्रणाम नहीं करना चाहिए। और भी लिखा है कि—नम इत्येव यो ब्रूयान्मद्भक्तः श्रद्धयान्वितः। तस्याक्षयं भवेल्लोकं श्वपचस्यापि नारद ॥ हे नारद! श्रद्धा से युक्त होकर के श्वपच भी मेरा भक्त यदि नमः ऐसा शब्द मुख से उच्चारण करता है तो उस श्वपच के लिए अक्षय लोक मिलता है ॥ श्रीवेङ्कटेश भगवान् ही मेरा उपाय और उपेय हैं (इति[३२]) इस प्रकार के (पूर्णप्रपत्तिम्[३३]) श्रीमन्नारायण की पूर्णप्रपत्ति (कृत्वा[३४]) करके (बहुदर्शयित्वा[३५]) भक्तजन कहते हैं कि हे नाथ! संसार के बहुत पदार्थों को दिखला करके (नाशयसि[३६]) नाश करते हैं (एतत्[३७]) मैं इस संसाररूप समुद्र के (तीरम्[३८]) तीर पर (आरुह्य[३९]) चढ़कर (श्रान्तः[४०]) थक गया (अस्मि[४१]) हूँ (प्राप्तुम्[४२]) अब आप अपने पास प्राप्त करने के लिए (कृपाम्[४३]) मेरे ऊपर कृपा (कुरु[४४]) कीजिये (लक्ष्म्या[४५]) श्रीलक्ष्मीदेवी करके (शापितः[४६]) शापित (असि[४७]) आप हैं (अथ[४८]) इसके बाद अब (अहम्[४९]) मैं (गन्तुम्[५०]) आपके पास जाने के लिए (न[५१]) नहीं (अनुजानामि[५२]) जानता हूँ कि किस मार्ग से आपके पास पहुँचूँगा (इनि[५३]) इस प्रकार के क्या आप ही (प्रतिरुध्य[५४]) मार्ग को रोक करके (अप्राप्तिः[५५]) प्राप्त नहीं होने देते हैं इसीको आर्त्तप्रपत्ति कहते हैं ॥३२॥

Scanned with OKEN Scanner

मूल—द्वयप्रपत्तिर्नाम शरीरान्तरप्राप्तौ स्वर्ग-
नरकानुभवेषु च विरक्तिभीत्युत्पत्त्या तन्निवृत्त्यर्थं
भगवत्प्राप्त्यर्थं च सदाचार्योपदेशक्रमेणोपाय-
स्वीकारं कृत्वा विपरीतप्रवृत्तिनिवृत्त्या वेदविहित-
वर्णाश्रमानुष्ठानं भगवत्कैङ्कर्यं च वाचिकमानस-
कायिकैर्यथाबलमनुष्ठायेश्वरस्य शेषित्वनियन्तृत्व-
स्वामित्वशरीरित्वव्यापकत्वधारकत्वरक्षकत्वभो-
क्तृत्वसर्वज्ञत्वसर्वशक्तित्वसर्वसम्पूर्णत्वावाप्तसम-
स्तकामत्वरूपाकारान् स्वस्य तच्छेषत्वनियाम्य-
त्वस्वत्व-शरीरत्व व्याप्यत्वधार्यत्वरक्ष्यत्वभोग्य-
त्वाज्ञत्वाशक्तत्वापूर्णत्वरूपाकारांश्चानुसंधाय
निवर्तय दुःखं मा वा निवर्तकान्तरसद्भाववान्
नास्मीति प्रकारेणोपायविषयसर्वभारांश्च तद्विषय

३८ ३९ ४० ४१
न्यस्य निर्भरतया वर्त्तेत इति ॥३३॥

टीका—(दृप्तप्रपत्तिः[१]) दृप्तप्रपत्ति (नाम[२]) किसको कहते हैं कि (शरीरान्तरप्राप्तौ[३]) मनुष्य के शरीर से अन्य देवता का शरीर या पशु-पक्षी आदिक का शरीर प्राप्त होने पर (स्वर्ग-नरकानुभवेषु[४]) देवता का शरीर धारण करके स्वर्गलोक के अनुभव करने पर, यहां पर कई एक मनुष्यों का कथन है कि प्रसिद्ध मनुष्य ही को देवता कहते हैं इससे देवयोनि मनुष्य से पृथक् नहीं माननी चाहिए। इसका उत्तर यह है कि मनु ने सृष्टिक्रम में मनुष्यों से भिन्न देवता माने हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि—कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः ॥ ॥ मनु० अ० १ श्लो० २२ ॥ वह प्राणियों के प्रभु कर्मात्मा इन्द्रादि देवों को बनाया ॥२२॥ और व्याकरण में भी लिखा है कि—सूर्याद्देवतायां चाब्वाच्यः ॥ वार्तिक ॥ सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या ॥ देवता जाति में उत्पन्न हुई जो सूर्य की स्त्री है उसके लिए आप् प्रत्यय होता है जैसे कि सूर्या ऐसा स्त्रीप्रत्ययान्त पद होता है। और जहां पर सूर्य की स्त्री मनुष्य जाति में पैदा हुई रहती है वहां पर सूरी ऐसा पद स्त्री प्रत्यय में होता है। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य जाति से भिन्न देवजाति है। और यजुर्वेद में भी लिखा है कि—अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो

देवता ॥ यजु० अ० १४ मं० २० ॥ एक अग्नि देवता, एक वायु देवता, एक सूर्य देवता, एक चन्द्रमा देवता, आठ वसु देवता, ग्यारह रुद्रदेवता, बारह आदित्य देवता, ओंचास मरुतदेवता, तेरह विश्वेदेव देवता, एक बृहस्पति देवता, एक इन्द्र देवता, एक वरुण देवता ॥२०॥ और भी लिखा है कि— त्रीणि शता त्रीणि सहस्राण्यग्निंत्रिंशच्च देवानवचासपर्यन्। औक्षन्घृतैर-स्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारन्न्यसादयन्त ॥ यजु० अ० ३३ मं० ७ ॥ तीन हजार तीन सौ तीस देवता अग्नि की परिचर्या करते हैं उन्होंने घृत से अग्नि को सींचा और इस अग्नि के लिए कुशा का आच्छादन करते हुए होता को होतृकर्म में नियुक्त किया ॥७॥ और भी लिखा है कि—पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवान् ॥ अथर्व० कां० ३ अ० ६ मं० ६ ॥ पत्नीवाले तीस और तीन देवता हैं ॥६॥ और भी लिखा है कि— दिवि देवा दिवि श्रिताः ॥ अथर्व० कां० ११ अ० ४ सू० ७ मं० २३ ॥ दिविश्रित देवता स्वर्ग में रहते हैं ॥२३॥ इन पूर्वोक्त प्रमाणों से स्पष्ट साबित होता है कि मनुष्य योनि से अलग देवयोनि चेतन स्वर्गलोक में है। और स्वर्ग के विषय में भगवद्गीता में भी लिखा है कि—त्रिविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते। ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥ गी० अ० ६ श्लो० २० ॥ ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। एवं त्रयीधर्ममनु प्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥ गी० अ० ६ श्लो० २१ ॥

Scanned with OKEN Scanner

ऋग्यजुः सामवेदों में कहे हुए कर्मपरायण पुरुष अग्निष्टोम आदि यज्ञों के द्वारा मुझको पूजकर यज्ञ शेष सोम को पीनेवाले जिनके पाप छूट गये हैं ऐसे ऐसे स्वर्ग में जाने की प्रार्थना करते हैं वह साधक पुण्य फल रूप देवेन्द्र के लोक को पाकर दिव्य देवताओं के भोग को भोगते हैं ॥२०॥ वह सकाम पुरुष उस बड़े भारी स्वर्गलोक को भोगकर पुण्य फल के न्यून हो जाने पर इस पृथ्वी पर आ जाते हैं इस प्रकार तीनों वेदों में बताये हुए काम्य कर्म को आग्रह के साथ करते हुए भोगों को चाहनेवाले पुरुष आवागमन को पाते हैं ॥२१॥ इस पूर्वोक्त स्वर्ग का अनुभव करने पर (च") और बुरा कर्म करके नरक का अनुभव करके। वह नरक इक्कीस हैं यह मनुस्मृति में लिखा है कि—सपर्यायेण यातीमान्नरकानेकविंशतिम् ॥ मनु० अ० ४ श्लो० ८७॥ वह पापात्मा क्रम से इन इक्कीस नरकों को प्राप्त करता है ॥८७॥ उन सब नरकों का नाम भी वहां ही लिखा हुआ है कि— तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ। नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च ॥ मनु० अ० ४ श्लो० ८८॥ सञ्जीवनं महावीचिं तपनं संप्रतापनम्। संहातं च सकाकोलं कुड्मलं प्रतिमूर्तिकम् ॥८९॥ लोहशंकुमृजीषं च पन्थानं शाल्मलीं नदीम्। असिपत्रवनं चैव लोहकारकमेव च ॥९०॥ तामिस्र १, अन्धतामिस्र २, महारौरव ३, रौरव ४, नरक ५, कालसूत्र ६, और महानरक ७ ॥८८॥ सञ्जीवन ८, महावीचि ९, तपन १०, संप्रतापन ११, संहात १२ और सकाकोल १३, कुड्मल १४,

प्रतिमूर्तिक १५ ॥८६॥ लोहशंकु १६, ऋजीषपन्था १७, शाल्मली १८, नदी १६, असिपत्रवन २० और लोहकारक २१ ये इक्कीस नरक हैं ॥१०॥ इन सब नरकों का अनुभव करने पर (विरक्ति-भीत्युत्पत्त्या[६]) स्वर्ग के सुख भोगने में वैराग्य और नरक के दुःख भोगने में डर उत्पन्न होने से (तन्निवृत्त्यर्थम्[७]) उस भय को दूर करने के लिए तथा (भगवत्प्राप्त्यर्थम्[८]) श्रीमन्नारायण भगवान् की प्राप्तिके वास्ते (च[९]) भी (सदाचार्योपदेशक्रमेण[१०]) श्रेष्ठ आचार्य के उपदेश के क्रम से (उपायस्वीकारम्[११]) भगवत्प्राप्ति के उपाय स्वीकार (कृत्वा[१२]) करके (विपरीत-प्रवृत्तिनिवृत्ताः[१३]) जिन कर्मों के करने से श्रीमन्नारायण भगवान का याद करना भूल जाता है उन बुरे विपरीत कर्मों की प्रवृत्ति से निवृत्त पुरुष (वेदविहितवर्णाश्रमानुष्ठानम्[१४]) वेद में कहे हुए ब्राह्मण १, क्षत्रिय २, वैश्य ३ और शूद्र ४ इन चारो वर्णों के और ब्रह्मचर्य १, गृहस्थ २, वानप्रस्थ ३ तथा संन्यास ४ इन चारो आश्रमों के जो कर्म हैं उनमें से अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार कर्म का अनुष्ठान और (भगवत्कैंकर्यम्[१५]) भगवान् के कैंकर्य को (च[१६]) भी (वाचिकमानसकायिकैः[१७]) वाणी से मन से और शरीर से (यथाबलम्[१८]) यथाशक्ति (अनुष्ठाय[१९]) करके। यहां बहुत से लोग वेद के विषय में कहते हैं कि केवल मन्त्र भाग को वेद कहते हैं। यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि महर्षियों ने मन्त्र और ब्राह्मण इन दोनों भागों को वेद माना है। देखिये लिखा है कि—तच्चोदकेषु

मंत्राख्या ॥ पूर्वमीमां० अ० २ पा० १ सू० ३२ ॥ प्रेरणालक्षण श्रुति को मन्त्र कहते हैं ॥३२॥ शेषे ब्राह्मणशब्दः ॥ पूर्वमीमां० अ० २ पा० १ सू० ३३ ॥ मन्त्र से शेष जो वेद है वह ब्राह्मण शब्द से कहा जाता है ॥३३॥ और महर्षि बौधायन भी कहे हैं कि—मंत्रब्राह्मणमित्याहुः ॥ बौधायन सूत्र० ॥ मन्त्र और ब्राह्मण इन दोनों को वेद कहते हैं ॥ और महर्षि कात्यायन और आपस्तम्ब भी कहे हैं कि—मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ॥ मन्त्र और ब्राह्मण इन दोनों का वेद नाम है ॥ और मनुस्मृति में भी लिखा है कि— उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा। सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥ मनु० अ० २ श्लो० १५ ॥ वेद में वचन मिलता है कि सूर्य के उदयकाल में हवन करना चाहिए और अनुदय काल में हवन करना चाहिए तथा सूर्य और नक्षत्र के अदृश्यकाल में भी हवन करना चाहिए ॥१५॥ यहां पर "उदिते जुहोति" "अनुदिते जुहोति" ये सब श्रुतियां ब्राह्मण भाग की हैं और मनुजी ने इन सबों को वैदिकी श्रुति कहा है। इन पूर्वोक्त प्रमाणों से स्पष्ट ब्राह्मण भाग भी वेद साबित होता है। जिस वेद से विहित जो भगवत्कैङ्कर्य है उसको अपनी शक्ति के मुताबिक मन वाणी और शरीर से करके (ईश्वरस्य[२०]) परमेश्वर श्रीमन्नारायण देव के (शेषित्व–नियन्तृत्व–स्वामित्व–शरीरत्व-व्यापकत्व–धारकत्व–भोक्तृत्व–सर्वज्ञत्व—सर्वशक्तित्व—सर्वसम्पूर्णत्वावाप्तसमस्तकामत्वरूपा-कारान्[२१]) शेषित्व तथा नियन्तृत्व और स्वामित्य तथा

शरीरित्व और व्यापकत्व तथा धारकत्व और रक्षकत्व तथा भोक्तृत्व और सर्वज्ञत्व तथा सर्वशक्तित्व और सर्वसम्पूर्णत्व तथा अवाप्तसमस्तकामत्व रूप आकारों को और (स्वस्य[२२]) अपने जीवात्मा के (तच्छेषत्वनियाम्यत्वस्वत्वशरीरत्वव्याप्यत्व-धार्यत्व-रक्ष्यत्व—भोग्यत्वाज्ञत्वाशक्तत्वापूर्णत्वरूपाकारान्[२३]) श्रीमन्नारायण का केवल शेषत्व नियाम्यत्म स्वत्व शरीरत्व व्याप्यत्व धार्यत्व रक्ष्यत्व भोग्यत्व अज्ञत्व अशक्तत्व अपूर्णत्व रूप आकारों को (च[२४]) भी (अनुसन्धाय[२५]) विचार करके। अर्थात् दृप्तप्रपत्ति करनेवाला यह समझता है कि नारायण ही शेषी हैं मुझको अपने नियमों में चलाते हैं वे व्यापक हैं मुझको धारण करनेवाले हैं रक्षा करनेवाले हैं भोगनेवाले हैं सबको जाननेवाले हैं उनमें सब प्रकार की शक्ति है सब तरह से पूर्ण हैं उनको सब प्रकार के काम प्राप्त हैं और मैं नारायण का शेष अङ्ग हूँ उनके नियमों में चलता हूँ उनका हूँ उनके शरीर की तरह उनके अधीन हूँ उनके स्वरूप के एक देश में रहता हूँ उनके धारण करने योग्य हूँ और रक्षा करने लायक हूँ उनके भोगने के लायक हूँ और मैं कुछ नहीं जानता हूँ किसी काम को करने के लिए समर्थ नहीं हूँ सब प्रकार के गुणों से रहित हूँ मेरे पास ऐसी कोई चीज नहीं कि जिससे श्रीमन्-नारायण की सेवा कर सकूँ। (निवर्त्तय[२६]) हे नाथ! आप दूर करें (दुःखम्[२७]) दुःख को (मा[२८]) नहीं (वा[२९]) या करें (निवर्तकान्तरसद्भाववान्[३०]) परन्तु और किसी दूसरे को

अपना दुःख दूर करनेवाला (न[३१]) नहीं (अस्मि[३२]) मैं समझता हूँ (इति[३३]) इस (प्रकारेण[३४]) प्रकार से (उपाय-विषयसर्वभारान्[३५]) समस्त उपाय विषय के भरोसाओं को (च[३६]) भी (तद्विषये[३७]) श्रीमन्नारायण के विषय में (न्यस्य[३८]) समर्पण करके, यह भगवद्गीता में भी लिखा है कि—यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ गी० अ० ९ श्लो० २७॥ हे कुन्तीपुत्र! जो कुछ तुम करो जो भोजन करो जो हवन करो जो दान दो और जो तप करो इन सबों को मेरे में अर्पण कर दो ॥२७॥ इस नियमानुसार सम्पूर्ण उपायों को नारायण में अर्पण करके (निर्भयतया[३९]) निर्भय होकर (वर्तते[४०]) रहता है (इति[४१]) इसीको दृप्तप्रपत्ति कहते हैं ॥३३॥

मूल—[१]आचार्याभिमानो [२]नाम [३]एते[४]ष्वेक-[५]स्मिन्नपि [६]शक्तिरहितं [७]कञ्चन [८]तस्य [९]च्युति[१०]मेतस्य [११]प्राप्ता[१२]वीश्वरस्य [१३]जायमानां [१४]प्रीतिं [१५]चा[१६]नुसन्धाय [१७]स्तनन्धयप्रजाया [१८]व्याधौ [१९]सति [२०]तं [२१]स्वदोषत्वेनानु-[२२]सन्धाय [२३]स्वय[२४]मौषधसेवाकर्त्री [२५]माते[२६]व [२७]एतस्मिन्-

[२८]निमित्तं [२९]स्वयमे[३०]वो[३१]पायानुष्ठानं [३२]कृत्वा [३३]रक्षितुं [३४]शक्तस्य
पर[३५]मदयालो[३६]र्महाभागवत[३७]स्याभिमाने[३८]ऽन्तर्भूय उ-
[३९]चितोपायं [४०]ज्ञापयति [४१]चेत् [४२]तं [४३]पश्याम [४४]इत्यु[४५]क्तप्रकारेण
[४६]सकलप्रवृत्तिनिवृत्तीनां [४७]तदाधीन्यापादनम् [४८]भग-
वतः [४९]स्वयं [५०]प्राप्यत्वे[५१]ऽपि [५२]सकलदेवतान्तर्यामित्वेन
[५३]प्राप्यत्ववत् [५४]अस्या[५५]चार्याभिमानस्य [५६]स्वातंत्र्येणो-
[५७]पायत्वे[५८]ऽप्य[५९]यं [६०]सर्वेषा[६१]मुपायानां [६२]सहकारी [६३]स्वतंत्र[६४]श्च
[६५]भवति ॥३४॥

टीका—(आचार्याभिमानः[१]) आचार्याभिमान (नाम[२]) किसको कहते हैं कि (एतेषु[३]) ये जो कर्म ज्ञान भक्ति प्रपत्ति उपाय हैं इन सबों में (एकस्मिन्[४]) एक उपाय को (अपि[५]) भी करने के लिये (शक्तिरहितम्[६]) सामर्थ्यरहित (कञ्चन[७]) किसी (तस्य[८]) उस जीव के (च्युतिम्[९]) नाश को और (एतस्य[१०]) इस जीव के (प्राप्तौ[११]) प्राप्त करने पर (ईश्वरस्य[१२]) ईश्वर के (जायमानाम्[१३]) उत्पन्न (प्रीतिम्[१४]) प्रीति को (च[१५]) भी (अनुसन्धाय[१६]) अनुसन्धान करके (स्तनन्धयप्रजायाः[१७])

स्तन के दूध पीनेवाले बालक के शरीर में (व्याधौ[१८]) रोग (सति[१९]) होने पर (तम्[२०]) उस रोग को (स्वदोषत्वेन[२१]) अपने दोष से उत्पन्न (अनुसन्धाय[२२]) समझ करके (स्वयम्[२३]) अपने (औषधसेवाकर्त्री[२४]) औषधि खानेवाली (माता[२५]) माता के (इव[२६]) समान ([२७]एतस्मिन्निमित्तम्[२८]) जो अपने सरल स्वभाव से आचार्य की सेवा करता है और कोई उपाय अपने उद्धार करने का मन में नहीं समझता है उस जीव के लिये (स्वयम्[२९]) अपने ही आचार्य (एव[३०]) निश्चय करके (उपायानुष्ठानम्[३१]) शिष्य के दोष को दूर करने के लिए उपायों के अनुष्ठान को (कृत्वा[३२]) करके (रक्षितुम्[३३]) दीन भक्त जीवों की रक्षा करने के लिए (शक्तस्य[३४]) समर्थ (परमदयालोः[३५]) परम दयालु और (महाभागवतस्य[३६]) परम भागवत आचार्य के (अभिमाने[३७]) अभिमान में (अन्तर्भूय[३८]) होकर के (उचितोपायम्[३९]) रहे तब शिष्य के लिए भगवत् प्राप्ति के योग्य उपाय को (ज्ञापयति[४०]) आचार्य उपदेश करते हैं (चेत्[४१]) तो (तं[४२]) उस सदुपदेश को (पश्यामः[४३]) हम सब साक्षात्कार करते रहते हैं (इति[४४]) इस (उक्तप्रकारेण[४५]) उक्त प्रकार के (सकलप्रवृत्तिनिवृत्तीनाम्[४६]) समस्त अपनी प्रवृत्ति और निवृत्ति को (तदाधीन्यापादनम्[४७]) आचार्यों का आधीन सर्वदा आपादन करना (भगवतः[४८]) भगवान् (स्वयम्[४९]) आप ही (प्राप्यत्वे[५०]) प्राप्य फलस्वरूप हैं (अपि[५१]) तो भी (सकल-देवतान्तर्यामित्वेन[५२]) सब ब्रह्मादिक देवताओं के अन्तर्यामी

Scanned with OKEN Scanner

भीतर विराजमान होने से (प्राप्यत्ववत्[५३]) प्राप्य फलस्वरूप श्रीमन्नारायण भगवान् के समान आचार्याभिमान है (अस्य[५४]) यह (आचार्याभिमानस्य[५५]) आचार्याभिमान ईश्वर की प्राप्ति में (स्वातंत्र्येण[५६]) स्वतंत्र खास करके (उपायत्वे[५७]) उपाय होने पर (अपि[५८]) भी (अयम्[५९]) यह आचार्याभिमान रूप उपाय (सर्वेषाम्[६०]) सब कर्म ज्ञान भक्ति प्रपत्ति रूप (उपायानाम्[६१]) भगवान् की प्राप्ति के उपायों के (सहकारी[६२]) सहायक है और (स्वतंत्रः[६३]) स्वतंत्र (च[६४]) भी (भवति[६५]) है अर्थात् आचार्याभिमान रूप उपाय कर्म ज्ञान भक्ति प्रपत्ति रूप उपायों की सहायता नहीं चाहता है इससे यह सब उपायों से श्रेष्ठ है इसीको आचार्याभिमान कहते हैं। इस प्रकार के पूर्वोक्त प्रमाणों से उपायस्वरूप के जो कर्म १, ज्ञान २, भक्ति ३, प्रपत्ति ४ और आचार्याभिमान ५ ये पांच प्रकार के भेद हैं इन सबों के लक्षण स्वरूप संक्षेप से निरूपण किये गये ॥३४॥

मूल—(विरोधिवर्गे[१]) विरोधी स्वरूपविरोधी[२] नाम[३] देहात्माभिमानम्[४] अन्यशेषत्वं[५], स्वस्वातंत्र्यञ्च[६],[७] ॥३५॥

टीका—(विरोधिवर्गे[१]) विरोधिस्वरूप जो स्वस्वरूप विरोधी १, परस्वरूपविरोधी २, पुरुषार्थस्वरूपविरोधी ३, उपायस्वरूपविरोधी ४ और प्राप्तिविरोधी ५ ये पांच प्रकार के

कहे हैं उन विरोधी वर्गों मे (स्वरूपविरोधी[२]) स्वस्वरूपविरोधी (नाम[३]) किसको कहते हैं कि (देहात्माभिमानम्[४]) अपने शरीर को ही आत्मा समझ लेना अथवा (अन्यशेषत्वम्[५]) श्रीमन्नारायण को छोड़कर किसी और का ही दास बन जाना या (स्वस्वातंत्र्यम्[६]) अपने को स्वतन्त्र (च[७]) भी समझ लेना इसको स्वस्वरूपविरोधी कहते हैं ॥३५॥

मूल—परत्वविरोधी[१] नाम[२] देवतान्तरेषु[३] परत्वप्रतिपत्तिः[४] समत्वप्रतिपत्तिः[५] क्षुद्रदेवताविषयेषु[६] शक्तियोगप्रतिपत्तिः[७], अवतारेषु[८] मनुष्यत्वप्रतिपत्तिः[९], अर्चावतारेष्व[१०]शक्तियोग[११]प्रतिपत्तिश्च[१२] ॥३६॥

टीका—(परत्वविरोधी[१]) परस्वरूप विरोधी (नाम[२]) किसको कहते हैं कि (देवतान्तरेषु[३]) श्रीमन्नारायण को छोड़कर अन्य किसी देवताओं को (परत्वप्रतिपत्तिः[४]) परमेश्वर मान लेना अथवा (समत्वप्रतिपत्तिः[५]) और ब्रह्मादिक देवताओं के बराबर ही श्रीमन्नारायण को समझ लेना या (क्षुद्रदेवता-विषयेषु[६]) छोटे छोटे देवताओं के विषय में (शक्तियोग-प्रतिपत्तिः[७]) अपने उद्धार करने की शक्ति मान लेना अथवा (अवतारेषु[८]) श्रीरामचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र आदिक अवतारों को (मनुष्यत्वप्रतिपत्तिः[९]) मनुष्य समझ लेना और (अर्चावतारेषु[१०])

Scanned with OKEN Scanner

प्रतिष्ठा की हुई श्रीमन्नारायण की मूर्ति में (अशक्तियोगप्रतिपत्तिः[११]) कुछ शक्ति नहीं है ऐसा (च[१२]) भी मान लेना इसको परस्वरूपविरोधी कहते हैं ॥३६॥

मूल—पुरुषार्थविरोधी[१] नाम[२] पुरुषार्थान्तरेष्विच्छा[३][४] स्वाभिमतभगवत्कैङ्कर्येष्व[५]निच्छा[६] च[७] ॥३७

टीका—(पुरुषार्थविरोधी[१]) पुरुषार्थविरोधी (नाम[२]) किसको कहते हैं कि (पुरुषार्थान्तरेषु[३]) श्रीमन्नारायण के चरणारविन्दों की सेवा को छोड़ करके अन्य पदार्थों की (इच्छा[४]) इच्छा करना और (स्वाभिमतभगवत्कैंकर्येषु[५]) अपने परम प्रिय श्रीमन्नारायण भगवान् के चरणारविन्दों की सेवा की (अनिच्छा[६]) इच्छा नहीं (च[७]) भी करना इसको पुरुषार्थ-स्वस्वरूपविरोधी कहते हैं ॥३७॥

मूल—उपायविरोधी[१] नाम[२] उपायान्तरेषु[३] वैलक्षण्यप्रतिपत्तिः[४], उपायलाघवम्[५] उपेयगौरवं[६], विरोधी[७] बाहुल्यं[८] च[९] ॥३८॥

टीका—(उपायविरोधी[१]) उपायस्वरूप विरोधी (नाम[२]) किसको कहते हैं कि (उपायान्तरेषु[३]) श्रीमन्नारायण की प्राप्ति के लिये शास्त्र में कहे हुए कर्म ज्ञान भक्तिप्रतिपत्ति आचार्या-

भिमानरूप उपायों को छोड़कर अन्य उपायों को (वैलक्षण्य-प्रतिपत्तिः[४]) विलक्षण अच्छा समझ लेना और (उपायलाघवम्[५]) कर्म ज्ञान भक्तिप्रतिपत्ति आचार्याभिमानरूप भगवत्प्राप्ति के उपायों को छोटा समझ लेना या (उपेयगौरवम्[६]) उपेय श्रीमन्नारायण का मिलना कठिन समझ लेना और (विरोधी[७]) श्रीमन्नारायण की प्राप्ति के विरोधी (बाहुल्यम्[८]) बहुत से (च[९]) भी हैं ऐसा समझ लेना इसको उपायस्वरूपविरोधी कहते हैं ॥३८॥

मूल—प्राप्तिविरोधी[१] नाम[२] प्रारब्धशरीरसम्बन्धः[३] अनुतापशून्यगुरुस्थिरभगवदपचारभागवतापचारासह्यापचारप्रभृतयः[४] सर्वे[५] विरोधिन[६] इत्युच्यन्ते[७] ॥३९॥

टीका—(प्राप्तिविरोधी[१]) श्रीमन्नारायण की प्राप्तिविरोधी (नाम[२]) किसको कहते हैं कि (प्रारब्धशरीरसम्बन्धः[३]) अपने शरीर के सम्बन्ध से बड़ा भारी अपराध करने पर भी (अनुताप-शून्यगुरुस्थिरभगवदपचारभागवतापचारासह्यापचारप्रभृतयः[४]) हाय मैंने बड़ा भारी स्थिर अपराध किया इस प्रकार से अपने मन में पछताव नहीं करना और भगवत् का अपचार करना तथा भागवत का अपचार करना और असह्यापसार करना

तथा प्रभृति इस पद से अकृत्य करण आदिक जो अपराध हैं। इन सब अपचारों का निरूपण श्रीवचन भूषण में लिखा है कि—भगवदपचारो नाम देवतान्तरैस्तुल्यतयेश्वरचिन्तनं रामकृष्णाद्यवतारेषु मनुष्यसजातीयत्वबुद्धिः वर्णाश्रमविपरीतोपचारः अर्चावतार उपादाननिरूपणम् आत्मापहारः भगवद्द्रव्यापहार एतत्प्रभृतिः ॥ श्रीवचनभूषण सू० ३२२ ॥ भगवद्द्रव्यस्य स्वयमपहारोऽपहर्तॄणां सहकारित्वं तेभ्यो याचितमयाचितं वा परिग्रहश्च भगवतोऽनिष्टः ॥सू० ३२३॥ भगवत् अपचार इसको कहते हैं कि अन्य ब्रह्मादिक देवताओं के तुल्य ईश्वर को चिन्तवन करना तथा श्रीराम श्रीकृष्ण आदिक अवतारों में मनुष्य के समान जाति समझना तथा अपने वर्ण और आश्रम से विरुद्ध आचरण करना तथा अर्चावतार के उपादान का निरूपण करना अर्थात् यह मूर्ति पत्थर है काष्ठ है लोहा पीतल ताम्बा चाँदी सोना मणि या मिट्टी है इत्यादिक कहना तथा मूर्ति को चुरा लेना और भगवान् के द्रव्य को ले लेना इत्यादिक ॥३२२॥ और भगवान् के द्रव्य को स्वयं चुराना या चुरानेवाले का साथ देना तथा मांगकर या बिना मांगे हुए कुछ उन सबों से ले लेना ये सब भागवत के अनिष्ट हैं अर्थात् ये सब भगवदपचार हैं ॥३२३॥ और भी लिखा है कि—यानैर्वा पादुकैर्वापि गमनं भगवद्गृहे। दीपोत्सवे वाद्यसेवा अप्रशस्ता मदग्रतः ॥ उच्छिष्टे चैकवस्त्रे च भगवद्वन्दनादिकम्। एकहस्तप्रमाणं च यत्सुप्तेऽस्मिन् प्रदक्षिणम् ॥

यत्पुरो दण्डपातश्च यच्च ताम्बूलमग्रतः। पादप्रसारणं चाग्रे तथा पर्यङ्कवन्दनम्॥ शयनं भक्षणं चैव मिथ्याभाषणमेव च। उच्चैर्भाषा मिथो जल्पो रोदनं चैव विग्रहः॥ निग्रहोऽनुग्रहश्चैव मिश्रश्च क्रूरभाषणम्। पृष्ठे कृत्वासनं चैव परेषामभिवादनम्॥ गुरोर्मौनं निजस्तोत्रं देवब्राह्मणनिन्दकम्। कम्बलावरणं चैव परनिन्दा परस्तुतिः॥ अश्लीलभाषणं चैव अधोवायुविमोचनम्। तत्तत्कालोद्भवानाञ्च फलादीनामनर्पणम्। अपराधा इमे विष्णोर्द्वात्रिंशत्परिकीर्तिताः। यत्नतो वर्जनीयास्ते विष्णुपूजनतत्परैः॥ भगवान् के मन्दिर में विमान से या खड़ाऊँ पहनकर जाना और दीप के उत्सव में बाजा बजाना भगवत् के सामने ठीक नहीं है। और जूठा मुँह तथा एक वस्त्र धारण करके भगवत् को वन्दनादिक और एक हाथ से प्रणाम करना तथा भगवत् के शयन करने पर प्रदक्षिणा करना। और भगवान् के सामने लाठी को गिराना तथा आगे पान खाना और भगवान् के सामने पैर फैलाना तथा पलङ्ग से वन्दना करना। और भगवान् के सामने शयन करना भोजन करना तथा झूठ बोलना और कोलाहल करना तथा आपस में बात करना, रोना और विग्रह करना तथा निग्रह करना और अनुग्रह करना तथा मिश्र और क्रूर भाषण करना और भगवान् को पीछे करके बैठना तथा भगवान के सामने किसी दूसरे की स्तुति करना। और श्रीगुरुजी के बुलाने पर नहीं बोलना तथा अपनी स्तुति करना और देवता तथा ब्राह्मण की निन्दा करना

तथा कम्बल से परदा करना और दूसरे किसी की निन्दा या स्तुति करना। और भगवान के सामने अश्लील भाषण करना तथा गुदा मार्ग से वायु विमोक्षण करना और तत्तत् समय में होनेवाले फल आदिक को श्रीमन्नारायण के लिए समर्पण नहीं करना। श्रीविष्णुभगवान् के ये बत्तीस अपराध कहे गये हैं। श्रीविष्णुभगवान की पूजा में तत्पर मनुष्य यत्न से इन अपराधों का परित्याग कर दे॥ इसीको भगवदपचार कहते हैं और—

भागवतापचारो नामाहंकारार्थकामहेतुना श्रीवैष्णवेषु क्रियमाणो विरोधः॥ श्रीवचनभूषण सू० ३२४॥ भागवतापचार इसको कहते हैं कि अहंकार से अर्थ और काम के लिए श्रीवैष्णवों से विरोध करना॥३२४॥ भागवतापचारोऽनेकविधः॥ श्रीवचनभूषण सू० २१०॥ तत्रैकं तेषु जन्मनिरूपणम्॥२११॥ इदं चार्चावतारे उपादानस्मृतेरपि क्रूरम्॥२१२॥ तन्मातृयोनिपरीक्षया सममिति शास्त्रं वदति॥२१३॥ त्रिशंकुवत्कर्मचाण्डालो भवेत् वक्षसि यज्ञोपवीतमेव चर्मरज्जुर्भवेत्॥२१४॥ जातिचाण्डालस्य कालान्तरे भागवतो भवितुं योग्यतास्ति सापि नास्त्यस्य आरूढपतितत्वात्॥२१५॥ भागवतापचार अनेक प्रकार के होते हैं॥२१०॥ उन सम्पूर्ण अपराधों में यह एक प्रधान अपराध है कि श्रीवैष्णवों का जन्म निरूपण करना॥२११॥ यह अपराध अर्चावतार के उपादान स्मरण से भी अत्यन्त क्रूर है॥२१२॥ महाभागवतों का जन्मनिरूपण करना अपनी माता के योनि की परीक्षा के समान है ऐसा शास्त्र कहता

है ॥२१३॥ भागवतों के जन्मनिरूपण करनेवाला त्रिशंकु के समान कर्मचाण्डाल हो जाता है और उसके वक्षस्थल के यज्ञोपवीत भी चाम की रस्सी के समान हो जाता है ॥२१४॥ चाण्डाल जाति को दूसरे काल में भागवत होने की योग्यता है परन्तु श्रीवैष्णव के जन्मनिरूपण करनेवालों को कभी भी भागवत होने की योग्यता नहीं है क्योंकि वह आरूढपतित है ॥२१५॥ यहां भागवत के विषय में कुछ लोग यह कहते हैं कि अत्रिस्मृति में यह लिखा है कि—वेदैर्विहीनाश्च पठन्ति शास्त्रं शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठाः। पुराणहीनाः कृषिणो भवन्ति भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति ॥ वेद से विहीन पुरुष शास्त्र को पढ़ते हैं और शास्त्र से रहित पुराण का पाठ करते हैं और जो पुराण से रहित हैं वे खेती करते हैं तथा जो खेती करनेवालों से भी पतित होते हैं वे भागवत होते हैं। इससे पतित लोग भागवत होते हैं। इसका उत्तर यह है कि इस श्लोक में जो खेती करनेवालों से भ्रष्ट भागवत बताया गया है वह उन लोगों को कहा है कि जो निकम्मे या पाखण्डी लोग शिर में अन्य जानवरों के बाल जोड़कर बड़े बड़े जटा बनाते हैं और शरीर में राख लगा करके हाथ में चिमटा, कमण्डलु रखते हैं केवल दुनिया से पुजवाने के लिए और अपने को भगवत् का उपासक भागवत कहते हैं। जो पराशरीय धर्मशास्त्र का उत्तर खण्ड दशवें अध्याय के नौवें श्लोक में लिखा है कि—अर्थपञ्चक के जाननेवाले तथा पञ्चसंस्कार से संस्कृत और तीन आकारों

से जो युक्त हो उसको भागवत कहते हैं ॥ इस लक्षणवाले भागवत का तो उस श्लोक में नहीं वर्णन है क्योंकि इस लक्षण वाला भागवत तो ब्रह्मादिक देवताओं से भी श्रेष्ठ है यह श्रीमद्भागवत में लिखा है कि— स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान्विरिञ्चितामेति ततः परं हि माम् । अव्याकृतं भागवतोऽथ वैष्णवं परं पदं यद्विबुधाः कलात्यये ॥ श्रीमद्भा० स्कं० ४ अ० २४ श्लो० ३० ॥ शिवजी कहे हैं कि अपने धर्म में निष्ठ पुरुष सौ जन्म करके ब्रह्मा के भाव को प्राप्त करता है इसके बाद निश्चय करके वह पुरुष मुझको प्राप्त करता है इसके बाद वह भागवत होता है और भागवत होकर विकाररहित श्रीविष्णु के परम पद को प्राप्त होता है जिस पद को कला के नष्ट होने पर देवता सब प्राप्त करते हैं ॥३०॥ और भी वहां ही शिवजी कहे हैं कि— न मे भागवतानां च प्रेयानन्योऽस्ति कर्हिचित् ॥ श्रीमद्भा० स्कं० ४ अ० २४ श्लो० ३१ ॥ भागवत और भगवान् से अन्य कोई भी कभी अतिशय प्रिय मेरे को नहीं है ॥३१॥ और भी लिखा है कि— सहस्रवार्षिकी पूजा विष्णोर्भगवतो द्विजाः । सकृद्-भागवताचार्याः कलां नार्हति षोडशीम् ॥ पराश० उत्तर खं० अ० १० श्लो० ४ ॥ हे ब्राह्मणो ! श्रीविष्णु भगवान् के हजार वर्ष की पूजा एक बार भागवतों की पूजा के सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं होती है ॥४॥ और भी लिखा है कि— महाभागवता यत्र वसन्ति विमलाः शुभाः । तद्भूमिर्मङ्गला प्रोक्ता यथा विष्णुपदं शुभम् ॥ परा० उत्तर अ० १० श्लो० १० ॥

जहां पर विमल शुभ महाभागवत रहते हैं वह भूमि मंगलरूपा है जैसे श्रीविष्णु भगवान् का पद शुभ है ॥१०॥ इन पूर्वोक्त प्रमाणों से स्पष्ट यह साबित होता है कि जो श्रीवैष्णव भागवत हैं वे सबसे श्रेष्ठ हैं। और— असह्यापचारो नाम निर्निबन्धनं भगवद्भागवतविषय इत्युक्तावसहमानतया स्थितिः आचार्यापचारः तद्भक्तापाचारश्च ॥ श्रीवचनभू० सू० ३२५ ॥ असह्यापचार इसको कहते हैं कि बिना कारण के भगवत् और भागवत की वार्ता को न सहन करना और आचार्य का अपमान करना तथा भगवत् भागवत और आचार्य के भक्तों के साथ अपचार करना इसको असह्यापचार कहते हैं ॥३२५॥ और— अकृत्यकरणं नाम परहिंसापरस्तोत्रपरदारपरिग्रहः। परद्रव्यापहारोऽसत्यकथनमभक्ष्यभक्षणमेतत्प्रभृति ॥ श्रीवचनभू० सू० ३२१ ॥ अकृत्य करण अपचार इसको कहते हैं कि मन वाणी और शरीर से दूसरे को दुःख देना तथा दूसरों की स्तुति करना और दूसरे की स्त्री को फुसलाकर या जबरदस्ती से ले आना तथा दूसरे के द्रव्य को चोरी से या बरियारी से ले लेना और असत्य बोलना और मद्य मांस लहसुन पियाज गजरा मसूर मलमूत्र आदिक अभक्ष्य को भोजन करना इत्यादिक ॥३२१॥ ये (सर्वे[५]) सब (विरोधिनः[६]) विरोधी (इति[७]) ऐसा (उच्यन्ते[८]) कहे जाते हैं इसीको प्राप्तिविरोधी कहते हैं ॥३६॥

मूल—अन्नदोषः[१] ज्ञानविरोधी[२] ॥४०॥

टीका—(अन्नदोषः[१]) अन्न का दोष (ज्ञानविरोधी[२]) ज्ञान का विरोधी है। जैसे मसूर अन्न शास्त्र में अपवित्र कहा है और चाण्डालादिक जो हीन जाति के मनुष्य हैं उनका तथा जो अत्यन्त पाप करनेवाले मनुष्य हैं उनका भी अन्न नहीं खाना चाहिये क्योंकि उस अन्न के खाने से ज्ञान का नाश हो जाता है ॥४०॥

मूल—सहवासदोषो[१] भोगविरोधी[२] ॥४१॥

टीका—(सहवासदोषः[१]) पाप करनेवाले मनुष्यों के सहवास का दोष (भोगविरोधी[२]) भोग का विरोधी है, इससे पापियों का सहवास नहीं करना चाहिये ॥४१॥

मूल—अभिमानः[१] स्वरूपविरोधी[२] ॥४२॥

टीका—(अभिमानः[१]) अभिमान (स्वरूपविरोधी[२]) अपने स्वरूप का विरोधी है इससे अभिमान नहीं करना चाहिए॥४२॥

मूल—एवमर्थ[१]पञ्चकज्ञानोत्पत्त्या[२] मुमुक्षोः[३] संसारे[४] वर्तमानस्य[५] चेतनस्य[६] मोक्षसिद्धिपर्यन्तं[७] संसारासंक्रान्त्यर्थं[८] कालक्षेपकरणप्रकारः[९] वर्णाश्र-[१०] मानुरूपमशनाच्छादने[११] सम्पाद्य[१२] यदन्नः[१३] पुरुषो[१४]

[१५] भवति [१६] तदन्नास्तस्य [१७] देवता[१८]इत्यु[१९]क्त[२०]प्रकारेण [२१] सकल-
[२२] पदार्थानपि [२३] भगवद्विषये [२४] निवेद्य [२५] यथावेलं [२६] भाग-
वतकिञ्चित्कारं [२७] कृत्वा [२८] देहधारणमात्रं [२९] प्रसाद-
प्रतिपत्त्यो[३०]ज्जीवेत [३१] कथञ्चित् [३२] तत्त्वज्ञानोत्पादकस्या-
[३३] चार्यस्य [३४] सन्निधौ [३५] किञ्चित्कारेण [३६] तदभिमतो
[३७] वर्तते ॥४३॥

टीका—(एवम्[१]) इस प्रकार से (अर्थपञ्चकज्ञानोत्पत्त्या[२]) स्वस्वरूप १, परस्वरूप २, पुरुषार्थस्वरूप ३, उपायस्वरूप ४, विरोधिस्वरूप ५ इन अर्थपञ्चक के ज्ञान के उत्पत्ति के द्वारा (मुमुक्षोः[३]) मोक्ष की इच्छा करनेवाले (संसारे[४]) संसार में (वर्तमानस्य[५]) वर्तमान (चेतनस्य[६]) जीव के (मोक्षसिद्धि-पर्यन्तम्[७]) जब तक मोक्ष की सिद्धि न होवै तब तक (संसारा-संक्रान्त्यर्थम्[८]) जिससे फिर जन्ममरणादि अनेक दुःखों से भरे हुए संसार में न पड़ना पड़े इसलिये (कालक्षेपकरणप्रकारः[९]) कालक्षेप करना और अपने अपने (वर्णाश्रमानुरूपम्[१०]) वर्ण और आश्रम के योग्य (अशनाच्छादने[११]) भोजन और वस्त्र को (सम्पाद्य[१२]) अच्छी प्रकार से पैदा करके (यदन्नः[१३]) जो

अन्न (पुरुषः[१४]) पुरुष को (भवति[१५]) प्राप्त होता है (तदन्नाः[१६]) वही अन्न (तस्य[१७]) उस पुरुष के (देवताः[१८]) देवता प्राप्त करते हैं (इति[१९]) ऐसा (उक्तप्रकारेण[२०]) उक्त प्रकार करके (सकलपदार्थान्[२१]) समस्त पदार्थों को (अपि[२२]) भी (भगवद्विषये[२३]) श्रीमन्नारायण भगवान् के विषय में (निवेद्य[२४]) समर्पण करके (यथावेलम्[२५]) जैसी वेला या शक्ति हो वैसा (भागवतकिञ्चित्कारम्[२६]) भगवान् के भक्तों के सत्कार को (कृत्वा[२७]) करके (देहधारणमात्रम्[२८]) अपने केवल शरीर के धारणमात्र (प्रसादप्रतिपत्त्या[२९]) भगवान् का प्रसाद समझ करके (उज्जीवेत[३०]) उस अन्न को ग्रहण करके जीवन रक्खे क्योंकि लिखा है कि—विष्णोर्निवेदितं चान्नं योऽश्नाति भुवि मानवः। स याति परमं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ पद्म० पु० ॥ श्रीविष्णु भगवान् के भोग लगाये हुए अन्न का पृथिवी में जो मनुष्य भोजन करता है वह आवागमन से रहित श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करता है॥ और भी नारदीय में लिखा है कि—नारायणस्य नैवेद्यं विप्रहत्याविनाशनम् ॥ नारायण का नैवेद्य ब्रह्महत्या को नाश करनेवाला है ॥ इससे श्रीमन्नारायण के भोग को अवश्य सेवन करना चाहिये (कथञ्चित्[३१]) और किसी प्रकार से (तत्त्वज्ञानोत्पादकस्य[३२]) यथार्थ तत्त्वज्ञान को पैदा करनेवाले। (आचार्यस्य[३३]) आचार्य के (सन्निधौ[३४]) पास में (किञ्चित्कारेण[३५]) कुछ सेवा करते हुए (तदभिमते[३६]) आचार्य के अभिमत (वर्तेत[३७]) रहे कि जिससे उस समय मनुष्य के

ऊपर आचार्य की कृपा बनी रहै ॥४३॥

मूल—ईश्वरसन्निधौ[1] स्वस्य[2] नीचत्वम[3]नुसंदधीत[4] ॥४४॥

टीका—(ईश्वरसन्निधौ[1]) श्रीमन्नारायण की सन्निधि में (स्वस्य[2]) अपने को (नीचत्वम्[3]) नीचा (अनुसन्दधीत[4]) अनुसन्धान करना चाहिये ॥४४॥

मूल—आचार्यसन्निधौ[1] स्वस्या[2]ज्ञानम[3]नुसन्दधीत[4] ॥४५॥

टीका—(आचार्यसन्निधौ[1]) श्रीआचार्य की सन्निधि में (स्वस्य[2]) अपने को (अज्ञानम्[3]) मैं अज्ञानी हूँ ऐसा (अनुसन्दधीत[4]) अनुसन्धान करना चाहिये ॥४५॥

मूल—भागवतसन्निधौ[1] स्वस्य[2] पारतन्त्र्य[3]मनुसन्दधीत[4] ॥४६॥

टीका—(भागवतसन्निधौ[1]) भगवान के भक्त श्रीवैष्णवों की सन्निधि में (स्वस्य[2]) अपने को (पारतन्त्र्यम्[3]) मैं भागवतों के अधीन हूँ ऐसा (अनुसन्दधीत[4]) अनुसन्धान करना चाहिये ॥४.॥

Scanned with OKEN Scanner

मूल—संसारिणामग्रे स्वव्यावृत्तिमनुसन्दधीत ॥४७॥

टीका—(संसारिणाम्[१]) संसारवाले विषयी जीवों के (अग्रे[२]) आगे (स्वव्यावृत्तिम्[३]) मैं जन्म मरण रूप संसार से कैसे छुटूँगा ऐसा (अनुसन्दधीत[४]) अनुसन्धान करना चाहिये ॥४७॥

मूल—प्राप्ये त्वरा प्रापकेऽध्यवसायः विरोधिनि भयमितरविषयेष्वत्यरुचिः स्वदेहेऽरुचिः स्वरूपज्ञानं स्वरक्षणेऽशक्तिश्च यथानुवर्तेरन् तथा ज्ञानानुष्ठानाभ्यां युक्तो वर्तेत एवंभूत ईश्वरस्य महिषीभ्यो नित्यमुक्तेभ्यश्चात्यन्ताभिमतो भवेत् ॥४८॥

॥ इति अर्थपञ्चकं संपूर्णम् ॥

Scanned with OKEN Scanner

टीका—(प्राप्ये[१]) मोक्ष चाहनेवाले मनुष्यों को चाहिए कि प्राप्य जो श्रीमन्नारायण भगवान् हैं उनके विषय में (त्वरा[२]) अपने मन में जल्दीबाजी करते रहना और (प्रापके[३]) प्रापक जो भगवान् की प्राप्ति के उपाय कर्म ज्ञान भक्ति प्रपत्ति और आचार्याभिमान हैं इन सबों के विषय में (अध्यवसायः[४]) अध्यवसाय करते रहना तथा (विरोधिनि[५]) जो श्रीमन्नारायण की प्राप्ति के विरोधी हैं उनके विषय में (भयम्[६]) डरते रहना (इतरविषयेषु[७]) और श्रीमन्नारायण से अन्य किसी विषय में (अत्यरुचिः[८]) अत्यन्त रुचि नहीं करना तथा (स्वदेहे[९]) अपने शरीर में भी (अरुचिः[१०]) प्रीति नहीं करना और (स्वरूप-ज्ञानम्[११]) अपने स्वरूप का ज्ञान करना कि मैं कौन हूँ तथा (स्वरक्षणे[१२]) अपनी रक्षा करने में (अशक्तिः[१३]) अपनी शक्ति नहीं समझना (च[१४]) और (यथा[१५]) जिस प्रकार से (अनुवर्तेरन्[१६]) ऊपर कहे हुए गुण मोक्ष चाहनेवाले मनुष्यों में बने रहें (तथा[१७]) जिस प्रकार से (ज्ञानानुष्ठानाभ्याम्[१८]) ज्ञान और अनुष्ठान करने से (युक्तः[१९]) युक्त (वर्तेत[२०]) रहे (एवम्[२१]) इस प्रकार के (भूतः[२२]) भया हुआ जीव (ईश्वरस्य[२३]) श्रीमन्नारायण भगवान् की (महिषीभ्यः[२४]) भूमिदेवी तथा लीलादेवी और श्रीलक्ष्मीदेवीजी से तथा (नित्यमुक्तेभ्यः[२५]) अनन्त गरुड़ और विष्वक्सेन आदिक नित्य जीवों से तथा जनकादिक मुक्त जीवों से (च[२६]) भी (अत्यन्ताभिमतः[२७]) अत्यन्त प्रिय (भवेत्[२८]) हो जाता है ॥४८॥

श्रीवत्सवंशकलशोदधिपूर्णचन्द्रम् ।
श्रीकृष्णसूरिपदपङ्कजभृङ्गराजम् ॥
श्रीरङ्गवेङ्कटगुरूत्तमलब्ध–बोधम् ।
भक्त्या भजामि गुरुवर्यमनन्तसूरिम् ॥

इति श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्यवेदान्तप्रवर्तकाचार्यश्रीमत्परम-
हंसपरिव्राजकाचार्यसत्संप्रदायाचार्यजगद्गुरुभगवदनन्त-
पादीय–श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्यस्वामिना विरचिता
"मर्मबोधिनी" नाम्नी अर्थपञ्चकभाषाटीका
समाप्ता ।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

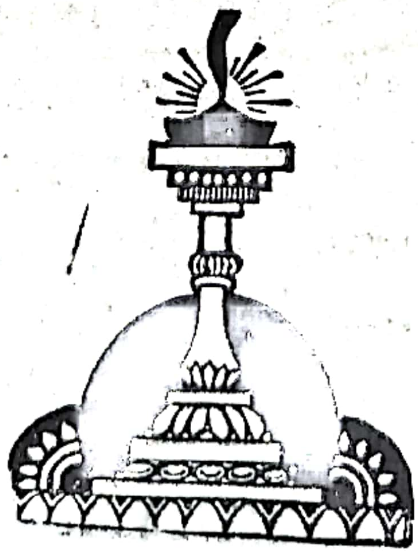

Scanned with OKEN Scanner

पुस्तक प्राप्तिस्थान—
वेदपाठी पं० रामदेवशुक्ल, वेदाचार्य, पोष्टाचार्य
श्रीत्रिदण्डिदेव ग्रन्थमालाभवन
कटरा बाजार, छपरा

मुद्रकः—सरस्वती प्रेस, छपरा, १९६०।

Scanned with OKEN Scanner